चेतना के फूल

सद्गुरु ओशो के अमृत वचनों
का अभूतपूर्व संकलन

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

  Rajneeshfragrance

निवेदन : सुबह तरोताजा होकर, प्रार्थनापूर्ण दशा में किताब उठाकर, केवल एक उद्धरण पढें– सदगुरु ओशो के इस खजाने में से सिर्फ एक हीरा निकालकर देखें। उसे भावपूर्वक हृदयंगम करें। अनुग्रह से भरकर, पुस्तक को बंद करके यथास्थान रखें।

अपनी दिनचर्या के दौरान अनेक बार उस वचन को ख्याल में लाएं।

रात सोने के पहले पुनः एक बार स्मरण करें– क्या आज उस वचन को जीने का सौभाग्य मिला? क्या कोई अवसर चूक गए?

फिर सदगुरु के प्रति धन्यवाद महसूस करते हुए सो जाएं।

1. एक कदम तो उठाओ...

अध्यात्म की यात्रा लंबी है। मार्ग तो कठिन है। चढ़ना है पर्वत–शिखर की ओर। उतार आसान होते हैं, चढ़ाव कठिन होते हैं। और यह तो अंतिम चढ़ाव है। चैतन्य के शिखर को छूना; इससे बड़ी न कोई यात्रा है, न कोई बड़ा अभियान है। लेकिन घबड़ाना मत। एक–एक कदम चलकर हजार मीलों की यात्रा पूरी हो जाती है। यही सोच कर कोई बैठ रहे कि इन छोटे–से कदमों से कैसे पहुंच पाऊंगा, तो फिर कोई यात्रा संभव नहीं; छोटी–सी दूरी भी पूरी नहीं हो सकती। प्रत्येक को एक ही कदम तो मिला है। एक बार एक ही कदम तो चल सकते हो। मगर एक–एक कदम चलते–चलते अनंत यात्रा भी पूरी हो जाती है।

कितनी दूरी मंजिल की हो, चलते–चलते कट जाती है।
विदा दिवस–मणि की बेला में, धरती तम–वसना बन जाती,
रजनी सुधि–बुधि भूली जैसी अगम गगन में सेज बिछाती;
कितनी रात अंधेरी हो पर धीरे–धीरे कट जाती है।
साहस हो तो बढ़ चल आगे हार न पंथी भर न निराशा,
कुहू निशा की बेला में भी देख सितारा राह दिखाता;
घनी अंधेरी उजियाले की एक रेख से फट जाती है।
भूल न भावुकता में भोले, दुर्बलता न कभी फल पाई,
नहीं याचना से जीवन में दो कण भी भिक्षा मिल पाई?
विश्वासों की कुछ किरणों से, दुःख की बदली छंट जाती है।
नींद रंगीली बन सकती है, सपने स्वर्णिम बन सकते हैं,
ढलते रवि की किरणों में भी इंद्रधनुष नव तन सकते हैं;
राह कंटीली प्रिय संबल पर हंसते–हंसते कट जाती है।
कितनी दूरी मंजिल की हो, चलते–चलते कट जाती है।

2. चार आर्य सत्य

भगवान बुद्ध ने चार आर्य सत्य कहे थे कि जीवन दुख है। दुख का कारण है। दुख निवारण की संभावना है। और दुख–निरोध की दशा है।

सदगुरु ओशो ने भी चार आर्य सत्य कहे हैं–

आनंद है जीवन, उत्सव है जीवन।

आनंद को साधने के उपाय हैं।

उत्सव की संभावना है।

उत्सव की परम दशा है।

3. नाम रहित धर्म

मैं अपने धर्म को कोई नाम नहीं देना चाहता। मैं तो सतत बगावत सिखा रहा हूं; विद्रोह अतीत से, विद्रोह परंपरा से, विद्रोह शास्त्रों से, विद्रोह शब्दों से, विद्रोह मन से। फिर जो शेष रह जाता है वह अनाम है, विशेषण–शून्य है। उसी शून्य का नाम धार्मिकता है। उसी शून्यता में पूर्ण का फूल खिलता है।

4. आत्म निर्माण की कला

जीवन एक कला है। और, मनुष्य अपने जीवन का कलाकार भी है और कला का उपकरण भी। जो जैसा अपने को बनाता है, वैसा ही अपने को पाता है। स्मरण रहे कि मनुष्य बना–बनाया पैदा नहीं होता। जन्म से तो हम अनगढ़े पत्थरों की भांति ही पैदा होते हैं। फिर, जो कुरूप या सुंदर मूर्तियां बनाती हैं, उनके स्रष्टा हम ही होते हैं।

5. कल्पवृक्ष कहां है?

अगर आदमी ठीक स्थिति में हो तो जो चाहता है, वहीं हो जाता है। गैर-ठीक स्थिति में तुम चाहते रहो, कुछ भी नहीं होता। ठीक स्थिति में जब भीतर के तार मिलते हैं तो साधन और साध्य की दूरी खो जाती है। इसको ही हिंदुओं ने कल्पवृक्ष की अवस्था कहा है। कल्पवृक्ष स्वर्ग में लगा हुआ कोई वृक्ष नहीं है। कल्पवृक्ष तुम्हारे भीतर की एक चैतन्य अवस्था है। कल्पवृक्ष का अर्थ होगा कि जहां साधन और साध्य का फासला न रहा, जहां दोनों के बीच कोई दूरी न रही। यहां साधन हुआ नहीं कि साध्य आ ही गया। एक साथ, युगपत! क्षणभर का भी, क्षण के खंड का भी हिस्सा नहीं है--यही कल्पवृक्ष की धारणा है।

कल्पवृक्ष की धारणा है कि जिस वृक्ष के नीचे तुम बैठे, इधर तुमने मांगा उधर मिला। ऐसे कोई वृक्ष कहीं नहीं हैं, लेकिन ऐसे वृक्ष तुम बन सकते हो। और उस बनने की दिशा में जो पहला कदम है वह यह कि साधन और साध्य की दूरी कम करो। क्योंकि जहां साधन और साध्य मिलते हैं, वहीं वह घटना घटती है कल्पवृक्ष की। मगर तुमने खूब दूरी बना रखी है। तुम तो सदा दूरी निर्मित करते चले जाते हो। तुम कहते हो, कल मिले। तुम्हें यह भरोसा ही नहीं आता कि आज मिल सकता है, अभी मिल सकता है, इसी क्षण मिल सकता है।

6. परमात्मा- 'पर' नहीं, 'स्व' में

ईश्वर को जो किसी विषय या वस्तु की भांति खोजते हैं, वो ना-समझ हैं। वह वस्तु नहीं है। वह तो आलोक, आनंद और आत्मा की चरम अनुभूति का नाम है। वह व्यक्ति भी नहीं है कि उसे कहीं बाहर पाया जा सके। वह तो स्वयं की चेतना का ही आत्यंतिक परिष्कार है।

7. साक्षी–भाव

सुख आए, साक्षी–भाव से देखना। देखते–देखते ही तुम पाओगेः सुख खो गया, तुम रह गए। और अगर सुख में सफल हो गए, फिर तुम दुख में सफल हो जाओगे। कुंजी तुम्हारे हाथ में है। फिर दुख आए, तुम दूर खड़े होकर देखना। और दूर खड़े हो सकते हो; क्योंकि शरीर और तुम दूर हो। इससे बड़ी दूरी किन्हीं दो चीजों के बीच नहीं हो सकती। चेतना और पदार्थ की दूरी से बड़ी दूरी और क्या हो सकती है! चांद–तारे भी इतने दूर नहीं हैं एक–दूसरे से, जितना तुम अपने शरीर से दूर हो। एक जड़ है, एक चेतन है। एक मिट्टी से बना है––मृण्मय है; एक चैतन्य से बना है––चिन्मय है। बड़ा फासला है। इससे ज्यादा विपरीत छोर नहीं मिल सकते। सुख से शुरू करो, दुख तक ले जाओ। और एक ही बात स्मरण रखो कि तुम बाहर हो।

8. चेतना का मंदिर

बड़ी पृथ्वी है। करोड़ों–अरबों लोग हैं। मंदिरों की भी कोई कमी नहीं है; प्रार्थना–पूजा भी खूब चल रही है। अर्चना की धूप जल रही है, दीये जल रहे हैं; लेकिन अर्चना की आत्मा नहीं है। पूजा हो रही है बाहर के मंदिर में; भीतर के मंदिर में पूजा का कोई स्वर नहीं है। बड़ी सजावट है मंदिर में बाहर; भीतर का मंदिर बिल्कुल खाली है। तो जाओ तुम कितना ही मंदिरों में, पहुंच न पाओगे; क्योंकि उसका मंदिर कोई पत्थर–मिट्टी का मंदिर नहीं है। उसका मंदिर तो परम चैतन्य का मंदिर है। उसका मंदिर कोई आदमी के बनाये नहीं बनता। बात तो बिल्कुल उलटी है––उसके बनाये आदमी बना है। आदमी उसके मंदिर बनाकर किसको धोखा दे रहा है?

9. तुम्हारे भीतर तुम से बड़ा

देह तो बूंद जैसी, और प्रकाश सागर जैसा है। हां, गागर में सागर है। और जब जागोगे, तो गागर को तोड़ कर बहने लगेगा सागर। देह बहुत पीछे पड़ी रह जाएगी; जैसे बीज की खोल पड़ी रह गई और बीज का छिपा प्राण एक विराट वृक्ष हो गया। बीज को देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कभी कि इसके भीतर इतने विराट वृक्ष का आविर्भाव हो सकता है; इतने फूल लगेंगे, इतने रंग-बिरंगे, इतने फल, इतने पत्ते, इतनी प्रशाखाएं, इस तरह आकाश में दूर-दूर तक फैलेंगी इसकी शाखाएं कि हजारों लोग इसके नीचे विश्राम कर सकें। कि इसकी सुगंध उड़ेगी दूर-दूर, कि हवाएं इससे सुवासित हो उठेंगी! कि पक्षी नीड़ बनाएंगे, कि पक्षी गीत गाएंगे! कि सूरज की किरणें इसके पत्तों से रास रचाएंगी! कौन सोच सकता था बीज को देखकर?

तुम्हें देखकर भी कोई नहीं सोच सकता कि परमात्मा छिपा होगा। तुम अभी बीज हो। जरा हिम्मत की और बीज टूटा, खोल पड़ी रह जाती है पीछे। ऐसे ही, देह पड़ी रह जाती है पीछे। तुम देह को पार कर फैलने लगते हो। तुम्हारे भीतर तुम से बड़ा प्रेम छिपा है। तुम्हारे भीतर तुम से विराट चैतन्य छिपा है। तुम्हारे भीतर तुमसे अनंत प्रकाश छिपा है। तुम्हारे भीतर इतना बड़ा आकाश है कि जब पहली दफा तुम उसे देखोगे तो भरोसा न आएगा। सोचोगे- कोई भ्रम तो नहीं हो रहा? मैं किसी स्वप्न में तो नहीं खो गया हूं? कोई सम्मोहित दशा तो नहीं है? मैं किसी कल्पना के जाल में तो नहीं उलझ गया हूं?

10. सुख पर ध्यान

दुख पर ध्यान दोगे तो हमेशा दुखी रहोगे। सुख पर ध्यान देना शुरु करो। दरअसल, तुम जिस पर ध्यान देते हो वही चीज सक्रिय हो जाती है। वही चीज विकसित होने लगती है।

11. परतंत्रता दुख है

आदमी की आत्मा जब तक परतंत्र है, तब तक कभी आनंद की उपलब्धि नहीं हो सकती। परतंत्रता के अतिरिक्त और कोई दुख नहीं है।

12. आलस्य और अंधविश्वास

सदियों से आदमी को विश्वास, सिद्धांत, मत बेचे गए हैं जो कि एकदम मिथ्या हैं, झूठे हैं, जो केवल तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं के, तुम्हारे आलस्य के प्रमाण हैं। तुम करना कुछ चाहते नहीं, और पहुँचना स्वर्ग चाहते हो।

13. अखंड चैतन्य

होश तुम्हारे और शरीर के बीच में खाई पैदा करने लगा। जैसे-जैसे होश सघन होगा, फासला बड़ा होगा। और अनंत फासला है तुममें और शरीर में; अनंत दूरी है। जैसे-जैसे तुम्हारा होश गहरा होगा, बीच का सेतु टूटेगा, संबंध विच्छिन्न होगा। और एक दिन तुम प्रगाढ़ रूप से देख पाओगे कि शरीर सिर्फ खोल है; तुम जीवन हो। शरीर मृत्यु है, पदार्थ है; तुम चैतन्य हो। शरीर अणुओं का खेल है, अणुओं का जोड़ है; आज है, कल नहीं होगा; परिवर्तनशील है। तुम किसी के जोड़ नहीं; तुम चैतन्य हो। अखंड। सदा थे, सदा रहोगे।

14. क्षण-क्षण होश की साधना

हम प्रतिपल अपने प्रत्येक विचार, अपने प्रत्येक कृत्य से स्वयं का निर्माण कर रहे हैं। इसलिए एक-एक पल होशपूर्वक जीना।

15. द्रष्टा का प्रयोग

इसे आज से ही शुरू करो। परिणाम जल्दी नहीं आएंगे; क्योंकि जन्मों-जन्मों की निकटता है। एक दिन में तोड़ी भी नहीं जा सकती। बड़े पुराने संबंध हैं, तोड़ने में वक्त लगेगा। लेकिन अगर तुमने थोड़ी-सी चेष्टा की तो टूट जाएगा क्योंकि संबंध झूठा है। असली होता तो टूटता नहीं। झूठा है; बस ख्याल है। ख्याल भर ही है कि मैं इसके साथ एक हूं। एक हो जाने का ख्याल ही झंझट खड़ी कर देता है।

भूख लगे तो ऐसा मत कहो कि मुझे भूख लगी है; इतना ही कहो कि मैं देखता हूं, शरीर को भूख लगी है। और सच्चाई भी यही है। तुम देखने वाले हो। भूख शरीर को लगती है। चेतना को कभी कोई भूख लग भी नहीं सकती। शरीर में ही भोजन जाता है। शरीर में ही रक्त-मांस की जरूरत पड़ती है। शरीर ही थकता है, चेतना कभी थकती नहीं। चेतना तो ऐसा दीया है, जो बिना बाती और बिना तेल के जलता है। वहां कोई भोजन, कोई ईंधन, न जरूरी है, न कभी चाहा गया है।

शरीर के लिए ईंधन चाहिए--भोजन चाहिए, पानी चाहिए। शरीर यंत्र है; आत्मा कोई यंत्र नहीं है। भूख लगे, शरीर को भोजन दो। बस इतना स्मरण रखो कि शरीर को भूख लगी है, मैं देख रहा हूं। प्यास लगे, पानी दो। जरूरी है देना, यंत्र को देना ही पड़ेगा।

16. भीतर का एक स्वर

तुमने कभी रात का सन्नाटा सुना है? सन्नाटे का भी एक संगीत है। जब कोई भी आवाज नहीं होती, तब भी एक आवाज बच जाती है। जब सब शोरगुल खो जाता है, तब उस सन्नाटे में भी एक स्वर होता है। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर की सब भीड़, सब शोरगुल खो जायेगा, तब तुम्हारे भीतर तुम्हें एक स्वर सुनाई पड़ेगा, वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

17. मन, चित, चैतन्य

साधारण मन तो तुम्हारे पास है, चित तुम्हारे पास नहीं है। जब तक मन अंधेरे से राजी है तब तक वह चित नहीं है। जब मन चैतन्य की प्यास से भरता है और चैतन्य के आरोहण पर निकलता है; और जब कहता है चैतन्य होना है और चेतना है, जागना है, जागरण की अभीप्सा जब मन में पैदा होती है तब मन चित्त हो जाता है। तब मन साधारण मन न रहा। तब एक नई ही घटना घट गई। वह चैतन्य होने लगा।

मन साधारणतः अचित है, बिल्कुल बेहोश है। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारा मन तुमसे क्या करवाता है। तुम करते रहते हो। जैसे कि कोई शराब के नशे में कर रहा है। किसी ने गाली दी, तुम्हें क्रोध आ गया। तुम कहते जरूर हो, कि मैंने क्रोध किया, अब मैं क्रोध न करूंगा; लेकिन तुम गलत कहते हो। तुमने क्रोध किया नहीं। मन ने क्रोध करवा लिया। तुम मालिक नहीं हो। इसलिए तुम यह मत कहो, कि मैंने क्रोध किया। अगर तुम करने ही वाले होते तब तो तुम्हारे बस में होता–करते, या न करते। तुम मालिक नहीं हो। मन ने क्रोध करवा लिया है। तुम्हारा बस नहीं है। तुम कसम भी खाओ कि अब न करेंगे, कुछ हल नहीं होता। दूसरे दिन फिर जब घड़ी आती है, फिर क्रोध हो जाता है।

क्रोध तुम्हारी बेहोश अवस्था है––मूर्च्छित। मन मूर्च्छित है। मन मूर्च्छा है। इसलिए मन तो परमात्मा की प्यास से नहीं भर सकता। लेकिन मन जब चित हो जाता है––चित का मतलब मन जब जागने लगता है और चैतन्य होने लगता है, तब तुम प्रत्येक कृत्य को जागकर करने लगते हो।

18. स्वभाव की खोज

सारे धर्म की खोज स्वभाव की खोज है। स्वभाव की खोज धर्म है क्योंकि वह शाश्वत है। उससे तुम कभी न ऊबोगे क्योंकि वह तुम ही हो। उससे अलग होने का उपाय ही नहीं है। उसके पार खड़े होकर देखने का उपाय नहीं है। जिसे भी तुम दूर खड़े होकर देख सकते हो, उससे तुम ऊब जाओगे; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

19.मन को जगाओ

एक बार तुम जागकर देखने लगो जीवन को, थोड़ी सी होश की किरण आ जाए, थोड़ी सी तुम्हारी आंखों में देखने की क्षमता आ जाए, कानों में सुनने की क्षमता आ जाए, हाथ में छूने की क्षमता आ जाए, तो तुम खुद ही पाओगे कि यह जीवन कुछ भी नहीं है। तुम किसी और जीवन की खोज से भर जाओगे।

20. जिम्मेदार कौन?

तुम भ्रष्ट होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है। तुम मुक्त होना चाहते हो, तो संसार आयोजन जुटा देता है। संसार तो सिर्फ आयोजन है; उपयोग तुम पर निर्भर है।

21. परम की झलक

जब काम गिर जाता है, शरीर गिर जाता है। मिट्टी से उठा, मिट्टी में वापस लौट जाएगा। और जैसे ही शरीर गिरा, वैसे ही शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है। तब न तो तुम स्त्री को पाते हो, न पुरुष को। तब तुम सब जगह परमात्मा को पाते हो।

22. चैतन्य की धारा

कठिन तपश्चर्या है इस विचार के प्रति जागना कि कोई भी विचार--कोई भी विचार--वह सुखद हो, दुखद हो; सच हो, झूठ हो; शास्त्र में हो, न हो; परंपरागत हो, गैर-परंपरागत हो; वह मैं नहीं हूं। विचार भी उधार हैं। सभी विचार उधारके हैं। वे भी समाज ने तुम्हें दिए हैं। वे भी दूसरे से तुम्हें मिले हैं। सीखा है उन्हें तुमने। तुम तो वह हो, जो अनसीखा तुम्हारे भीतर आया है। तुम चैतन्य मात्र हो, विचार नहीं। विचार तो तुम्हारे ऊपर तरंगों की भांति हैं; जैसे कूड़ा-कर्कट नदी के ऊपर तैर रहा हो, विचार ऐसे ही हैं। तुम तो नदी हो; चैतन्य की धारा हो।

23. कौन है अधिकारी?

सत्य की साधना सतत् है। श्वास-श्वास जिसकी साधना बन जाती है, वही उसे पाने का अधिकारी होता है।

24. परमात्मा एक प्रवाह

परमात्मा कोई एक घटना नहीं है जो घट गई; परमात्मा एक प्रवाह है जो प्रतिपल घट रहा है। परमात्मा प्रतिक्षण हो रहा है। वह तुम्हारे भीतर बढ़ रहा है। तुम परमात्मा के गर्भ हो।

25. उसका मंदिर कहां?

आदमी के बनाए हुए मंदिर-मस्जिदों में धर्म हो कैसे सकता है? धर्म तो वहां है जहां परमात्मा के हाथ की छाप है। और तुमसे ज्यादा उसके हाथ की छाप और कहां है? मनुष्य की चेतना इस जगत में सर्वाधिक महिमापूर्ण है। वहीं उसका मंदिर है; वहीं धर्म है।

26. धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम

धर्म है व्यक्ति और समष्टि के बीच प्रेम की एक प्रतीति--ऐसे प्रेम की जहां बूंद खो देती है अपने को सागर में और सागर हो जाती है; जहां सागर खो देता है अपने को बूंद में और बूंद हो जाता है; व्यक्ति और समष्टि के बीच ध्यान का ऐसा क्षण, जब दो नहीं बचते, एक ही शेष रह जाता है; प्रार्थना का एक ऐसा पल, जहां व्यक्ति तो शून्य हो जाता है; और समष्टि महाव्यक्तित्व की गरिमा से भर जाती है। इसलिए तो हम उस क्षण को ईश्वर का साक्षात्कार कहते हैं। व्यक्ति तो मिट जाता है, समष्टि में व्यक्तित्व छा जाता है; सारी समष्टि एक महाव्यक्तित्व का रूप ले लेती है।

27. पायल की झनकार

यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है, वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक; जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पर है, और सुंदर है अपने-आप में। और जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता में भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पड़ेगी; उस दिन हर फूल-पत्ती उसी की खबर देगी; हर पक्षी उसी के गीत गाएगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणों से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खड़ा दिखाई देने लगता है।

28. कौन सी ध्यान विधि करें?

गंभीरता केवल आध्यात्मिक बीमारियां ही पैदा करती है। जब तक कोई ध्यान तुम्हें हंसी, आनंद और मस्ती न दे, तब तक उससे बचो। वह विधि तुम्हारे लिए नहीं है।

29. समग्रता से जियो

मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं वह जीवन को जीने की कला है, जीवन को त्यागने की नहीं। वह जीवन को इस परिपूर्णता से, समग्रता से जीने का ढंग है कि जैसे जीवन ही परमात्मा है, कहीं और कोई परमात्मा नहीं। कुछ त्यागना नहीं है, कहीं भागना नहीं है। यहीं जीना है। मगर जीने की शैली सीखनी है। ध्यानपूर्वक जीना है। समाधिपूर्वक जीना है।

30. परम अज्ञानी बनो

ठीक उलटा ही है गुरु शिक्षक से। वह तुम्हारा सारा ज्ञान छीन लेता है। वह तुम्हारी स्मृति को गिरा देने के लिए उपाय बताता है। वह पहले तुम्हें परम अज्ञानी बना देता है; क्योंकि जैसे ही तुम परम अज्ञान की प्रतीति से भर जाते हो, वैसे ही परमात्मा के द्वार खुल जाते हैं। क्योंकि वह द्वार उसके लिए ही खुलते हैं, जो नहीं जानता है। जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, बस उसी के लिए वह द्वार खुलते हैं। जिसे ख्याल है कि मैं जानता हूं, उसके लिए परमात्मा के द्वार सदा बंद है--परमात्मा के कारण नहीं, उसके जानने की भ्रांति के कारण।

31. स्व्यं से अतृप्ति

मनुष्य को स्वयं से ही अतृप्त होना होता है, तभी उसके चरण प्रभु की दिशा में उठते हैं। जो स्वयं से तृप्त हो जाता है, वह नष्ट हो जाता है। जैसे अपने को पाते हो, उस पर ही मत रुक जाना। वह पथ का अंत नहीं प्रारंभ ही है। पूर्ण जब तक न हो जाओ, तब तक जानना कि अभी मार्ग का अंत नहीं आया है।

32. सुख कैसे होगा?

परमात्मा सुख की गहन प्रतीति में उठा हुआ अहोभाव है। जब तुम सुखी हो, तब तुम मान ही नहीं सकते कि परमात्मा नहीं है, अन्यथा सुख कैसे होगा? जब तुम सुखी हो और तुम्हारा हृदय गदगद है, और तुम्हारे रोएं-रोएं में गीत है, तब तुम मान ही नहीं सकते कि यह अस्तित्व चेतना से शून्य हो सकता है! क्योंकि तुम इस अस्तित्व में वही देखोगे, जो तुम्हारे भीतर घटित हो रहा है। तुम दुखी हो तो अस्तित्व नर्क है, परमात्मा शून्य है। तुम सुखी हो तो अस्तित्व स्वर्ग है--कण-कण परमात्मा से आप्लावित, भरा हुआ!

33. ध्यान : आंतरिक स्नान

भीतर तुम्हारी आत्मा का स्नान हो जाए--उसको ही मैं ध्यान कहता हूं। भीतर तुम स्वच्छ हो जाओ--उसी को मैं स्वास्थ्य कहता हूं। भीतर तुम आनंदमग्न हो जाओ, उत्सव आ जाए, दीए ही दीए जल जाएं, फूल ही फूल खिल जाएं--तो तुमने जाना, तुमने जीया, तुमने पहचाना। उसको मैं संन्यास कहता हूं। उसी कार्य में लगा हुआ हूं।

34. आकाश किस में?

परमात्मा का अर्थ है, जिसमें सब है; जिसमें बाहर का आकाश भी है और भीतर का आकाश भी है, जिसमें पदार्थ भी है और चैतन्य भी; जिसमें जीवन भी है और मृत्यु भी--दिन और रात, सुख और दुख, पतझड़ और बसंत, जिसमें सब समाहित है। परमात्मा सारे अस्तित्व का संदर्भ है, उसकी पृष्ठभूमि है।

35. जागृति की ध्वनि

साधारण होकर जी लो, जैसे पशु जीते हैं, पक्षी जीते हैं, पौधे जीते हैं, चांद–तारे जीते हैं––ऐसे साधारण होकर जीओ। इतना जरूर भेद रहेगा तुममें पक्षी और पौधे में, कि तुम्हारी सहजता में एक चैतन्य रहेगा, एक बोध रहेगा, एक जागृति रहेगी। उसी जागृति और तुम्हारी सहजता का मिलन हो जाये तो परमात्मा घट गया।

36. असली तपश्चर्या

असली तपश्चर्या है अपने अब तक के बनाये गये नाटकीय मुखौटों को अलग करना और फिर जो परिणाम होने वाले हैं उनको झेलना। कष्ट होंगे, मगर हर कष्ट तुम्हारी चेतना की गहराई को बढ़ाएगा। हर पीड़ा तुम्हारे जीवन को नई ऊंचाइयां दे जायेगी और हर आग तुम्हें निखारेगी। और जल्दी ही तुम पाओगे कि नाटक कर–करके जीवन गंवाया था, अब नाटक छोड़कर जीवन पाया है।

37. देव–पूजा से मोक्ष नहीं

पत्थरों को मत पूजो, चैतन्य को जगाओ। न देव–प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थयात्रा। बाहर की यात्राओं से भीतर कैसे पहुंचोगे? बाजार भी बाहर है, मंदिर भी बाहर है; तुम भीतर हो। किसी को मारा तो बाहर और किसी की पूजा की तो बाहर; और तुम भीतर हो। देवाराधन से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं। बाहर से छूटो, भीतर आओ। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

38. तुम साक्षी मात्र हो

स्मरण करो––कौन हो तुम? तुम साक्षी मात्र हो। तुमने बहुत दृश्य देखे हैं––अच्छे, बुरे, सफलता–असफलता के, दुख के सुख के। तुमने अंधेरे देखे हैं, रोशनियां देखीं हैं। यश देखे हैं, अपमान देखे हैं। तुमने जवानी देखीं, बुढ़ापा देखा, बचपन देखा। तुमने स्वास्थ्य देखा, बीमारियां देखीं। तुमने सब देखा है, सिर्फ एक तुम्हारे देखे के बाहर रह गया है––देखने वाला। अब उसको देख लो। उसको पहचानते ही मोक्ष, उसको पहचानते ही सिद्धि। और वह तुमसे जरा भी दूर नहीं, वह तुम ही हो।

39. अहंकार मिटाना नहीं है

साइकिल में पैडल मारते रहो तो वह चलती है। अहंकार भी ठीक चौबीस घंटे चलाइए, तो चलता है। मिटाने की कोई भी जरूरत नहीं है अहंकार को, सिर्फ चलाना बंद कर देना पर्याप्त है।

40. साक्षी या कर्ता

तुम्हारे किए से कुछ होगा भी नहीं। शायद तुम जो कर रहे हो, उसी के कारण तुम्हारी पहचान नहीं हो पा रही है दिल के दिए से। तुम्हारा कर्ता–भाव ही तुम्हें चैतन्य से अपरिचित रख रहा है। या तो तुम कर्ता हो सकते हो या साक्षी,,,,,, एक ढांचा है कर्ता का और एक ढांचा है साक्षी का। अगर कर्ता में जुड़ गए तो साक्षी नहीं दिखाई पड़ेगा। और साक्षी दिखाई पड़े तो ही दीया दिल का जलता हुआ मालूम पड़े। साक्षी चैतन्य ही तो ज्योति है अंतर की। कर्ता ही तो अंधेरा है। कर्ता ही तो धुआं है।

41. चैतन्य का विस्फोट

बुद्धत्व चैतन्य का विस्फोट है। चैतन्य का विस्फोट कहो या प्रेम का विस्फोट, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। एक ज्ञानी का ढंग है एक प्रेमी का ढंग है। एक भक्त का, एक ध्यानी का।

42. आदतों का गुलाम नहीं होना

संन्यासी को स्व-निर्भर होना है। उसे स्व-चेतना से जीना है। उसे आदतों का गुलाम नहीं होना है। आदतें होनी हीं नहीं चाहिए जीवन में। जीवन स्व-स्फूर्त होना चाहिए।

43. नकारात्मक में मत उलझना

अंधकार से लड़ना अभाव से लड़ना है। वह विक्षिप्तता है। लड़ना है, तो प्रकाश पाने के लिये लड़ो- जो प्रकाश पा लेता है, वह अंधकार को मिटा ही देता है।

44. निष्कम्प चैतन्य

आदमी अतीत को पकड़े रखता है, और जो-जो उसने अतीत में कमाया है--धन, पद, त्याग- जो भी, उसको संभाले रखता है कि कहीं खो न जाए। आंखें लगी रहती हैं भविष्य पर और पैर अड़े रहते हैं अतीत में। दोनों हाथों से अतीत को पकड़े रहते हो और दोनों आंखों से सपना देखते रहते हो भविष्य का। और इन दोनों के बीच में क्षण है एक, जहां अस्तित्व समाधि में सदा ही लीन है; जहां अस्तित्व क्षणभर को भी कंपा नहीं है; जहां निष्कम्प चैतन्य की ज्योति जल रही है; जहां मंदिर का द्वार खुला है।

45. गुरु पर श्रद्धा

जैसा तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। खतरनाक है छोड़ना, क्योंकि क्या पता, जब तुम क्लोरोफार्म से बेहोश पड़े हो, तब वह तुम्हारी गर्दन ही काट दे! लेकिन तुम सर्जन के हाथ में अपने को छोड़ देते हो। सर्जरी बंद हो जाए बिना श्रद्धा के; क्योंकि क्या पता है, कि सर्जन क्या करेगा। तुम तो चाहते थे एपेन्डिक्स निकाले, वह कुछ और निकाल ले। नहीं, तुम छोड़ देते हो अपने को हाथ में उसके कि ठीक है। एक भरोसा है।

गुरु के हाथ में तो छोड़ना और भी बड़े भरोसे की बात है। क्योंकि वह शरीर का ही मामला नहीं है, तुम्हारी चेतना का मामला है।

46. स्मरण की ज्योति

संत दादू कहते हैं, अब तो सपने में भी उसका विस्मरण नहीं होता। इसका अगर ठीक अर्थ समझो, तो यह हुआ, अब सपने आते ही नहीं, उसका स्मरण ही होता है, क्योंकि उसका स्मरण होता रहे, तो सपना कैसे आएगा? स्मरण का तो अर्थ है कि नींद पूरी नींद नहीं है अब। कोई हिस्सा जागा हुआ है, जो स्मरण कर रहा है। दीया जल रहा है भीतर। ज्योति जल रही है। अंधेरा नहीं है; अन्यथा स्मरण कौन करेगा? चैतन्य की ज्योति भीतर जगमगा रही है। अंधेरे में सपने आते हैं, जैसे अंधेरे में चोर-डाकू आते हैं, सांप-बिच्छू आते हैं। जब दीया जलता है घर में, तो चोर-डाकू भी दूर से निकल जाते हैं, कि घर का मालिक जागा हुआ है। जब ज्योति स्मरण की जलती है भीतर, तो सपना कैसे संभव है?

47. समस्त योग का राज

'दृश्य' से 'द्रष्टा' की ओर चलना है। दृश्य है रूप, क्रिया, सत्ता। दृष्टा है अरूप, अक्रिया, शून्य। 'दृश्य' है पर, अनित्य, संसार, बंधन, अमुक्ति, आवागमन। 'दृष्टा' है स्व, नित्य, ब्रह्म, मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण। देखो–जो देखता है, उसे देखो। यही समस्त योग है। यही रोज कह रहा हूं या जो भी कह रहा हूं, उसमें यही है।

48. असुरक्षित होने को स्वीकारो

सुरक्षा की खोज ही भ्रांति है। तुम असुरक्षित होने को स्वीकार कर लो। जब मैं कहता हूं कि अस्तित्व के हाथों में स्वयं को छोड़ दो, तो यही मेरा अर्थ है।

49. चेतना अमृत है

ऐसा समझो कि वृक्ष में फल लगे हैं, फल वापस फूलों में समा गए, वापस पत्तियों में समा गए, पत्तियां वापस शाखाओं में समा गईं, शाखाएं पीड़ में समा गईं, पीड़ जड़ों में समा गईं, जड़ें वापस बीज में समा गईं––वह बीज सबद। तुमने सब विस्तार समेट लिया, सब पसारा समेट लिया, और समाने लगे भीतर। एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम्हारी चेतना, तुम्हारा होश मूल बीज में समा जाता है। कबीर कहते हैं, वही एक अमृत है, बाकी तो सब मर जाएगा। तुम्हारा किया कुछ भी न बचेगा। जो तुम्हारे से भी पहले से है, जो तुम्हारे करने के पीछे छिपा है, जो तुम हो, वही बचेगा। कृत्य तो खो जाएंगे, कर्ता खो जाएगा, सिर्फ आत्मा बचेगी।

50. बस... प्रेम!

मेरा संदेश छोटा–सा है– 'प्रेम करो। सबको प्रेम करो। और ध्यान रहे कि इससे बड़ा कोई भी संदेश न है, न हो सकता है।'

51. सोना है खोना

मेरा संदेश पूछते हैं? बहुत छोटा सा है : 'जीवन में जागे हुए जीएं क्योंकि जो सोता है वह स्वयं को खो देता है।'

52. त्रिकालज्ञ

जितनी ऊंचाई तुम्हारी चेतना की बढ़ेगी, उतनी ही चीजें जो औरों के लिए भविष्य में हैं, तुम्हारे लिए वर्तमान हो जायेंगी। उतनी ही चीजें जो औरों के लिए अतीत हो गयी हैं, वे भी तुम्हारे लिए वर्तमान में होंगी। इसी बात की अंतिम तर्कसरणी...जैन कहते हैं कि महावीर त्रिकालज्ञ हैं। उसका अर्थ कुछ और नहीं है––उसका इतना ही अर्थ है कि ऊंचाई इतनी बढ़ गयी है कि अब अतीत भी वर्तमान है, भविष्य भी वर्तमान है––अब सिर्फ एक ही काल बचा, वर्तमान; अब तीन काल नहीं बचे।

53. जागने का अवसर

तुम देखते हो न, धनपतियों के बेटे अकसर बहुत बुद्धिमान नहीं हो पाते! और कारण इतना ही होता है कि न तूफान, न आंधी, न पाला। सब सुविधा, सब सुरक्षा, तो चैतन्य को जागने का अवसर नहीं मिलता। चैतन्य जगता है, जैसे चकमक से आग पैदा होती है। द्वंद्व चाहिए। द्वंद्व का स्वीकार चाहिए।

54. संन्यासी की खोज

खोज तो उसकी चल ही रही है। जो जानकर खोज करेंगे, जल्दी खोज लेंगे। जो ऐसे ही बिना जाने खोज करते रहेंगे, शायद जन्मों–जन्मों तक भटकते रहें और फरि भी खोज न हो पायें। खोज को सचेतन बना लेना ही दीक्षा है। खोज के प्रति जागरूक हो जाना ही, सम्यकरूपेण खोज के प्रति होश से भर जाना ही "संन्यास" है।

तुम्हारी आंखें दूर, बहुत दूर क्षितिज पर उलझी हैं। तुम उसे परलोक में खोज रहे हो; वह इसी लोक में मौजूद है। तुम उसे मृत्यु के बाद खोज रहे हो; किसी अशरीरी आत्मा में खोज रहे हो जबकि वह जीवन में ही मौजूद है। वह पदार्थ भी है और चेतना भी। सभी कुछ वही है।

55. यांत्रिक आदत नहीं, सचेतन कर्म

आदत से ऊपर उठना धर्म है। यांत्रिकता से ऊपर उठना विकास है। खाओ–पीओ जरूर, बस खाने–पीने में समाप्त मत हो जाना। नाचो और गाओ भी जरूर, मगर उस परम नृत्य को मत भूल जाना। उसे याद रखना। और यह हर नाच उसी परम नृत्य की याद दिलाता रहे, तो फिर कोई अड़चन नहीं है। संगीत सुनो, संगीत से मेरा विरोध नहीं है, लेकिन यह तुम्हारे भीतर तीर बनकर बैठ जाए और परम संगीत की खोज शुरू हो। प्रेम करो, जरूर करो; रूप से, रंग से लगाव बनाओ, लेकिन यह लगाव तुम्हें अरूप की याद दिलाए, यह लगाव छुद्र पर समाप्त न हो, यह तुम्हें परमात्मा की तरफ ले चलने लगे।

56. अपनी याद

संन्यास का इतना हीं अर्थ हैः अपनी याद को जगाओ। अब धींरे–धींरे द्रष्टा को सजग करो। और जैसे–जैसे द्रष्टा जगेगा वैसे–वैसे जगत का पट शून्य होता जाएगा। समाधि की अवस्था का अर्थ इतना हीं होता है कि जहां दृश्य सब खो गये और द्रष्टा अकेला रह गया। पर्दे पर कुछ भी नहीं है अब, फिल्म खत्म हो गई, अब घर जाने के सिवा कुछ भी न बचा। यह घर जाती चेतना मुक्त चेतना है। यह अपने स्रोत में जाती मुक्त चेतना है। यही निर्वाण है।

58. धर्म क्या है?

सरहपा और तिलोपा क्रियाकांड और अनुष्ठान को धर्म नहीं कहते।

तुम पूछते हो : कृपया बतायें कि उनके अनुसार धर्म क्या है? वैसा चैतन्य, जिसमें न कोई क्रियाकांड है, न कोई अनुष्ठान है, न कोई विचार है, न कोई धारणा है, न कोई सिद्धांत है, न कोई शास्त्र है। वैसा दर्पण, जिसमें कोई प्रतिछवि नहीं बन रही––न स्त्री की, न पुरुष की, न वृक्षों की, न पशुओं की, न पक्षियों की। कोरा दर्पण, कोरा कागज, कोरा चित्त...वह कोरापन धर्म है। उस कोरेपन का नाम ध्यान है। उस कोरेपन की परम अनुभूति समाधि है। और जिसने उस कोरेपन को जाना उसने परमात्मा को जान लिया।

और ऐसा नहीं कि परमात्मा बाहर खड़ा हुआ मिलेगा––विषय की तरह नहीं––अपने अंतरतम की तरह। उसी साक्षी का दूसरा नाम परमात्मा है। जिस दिन तुमने अपने भीतर छिपे साक्षी को जान लिया, तुमने सबके भीतर छिपे साक्षी को जान लिया। तुमने इस जगत के भीतर छिपे हुए चैतन्य का मूलस्रोत पकड़ लिया। तुम जगत के केंद्र पर आ गये।

59. असली तीर्थ स्नान

मैल तो भीतर है। अंधकार तो भीतर है। अचेतना तो भीतर है। तुम बाहर धो रहे हो। ध्यान से मिटेगी, स्नान से नहीं। प्रेम से धुलेगी, पानी से नहीं।

60. अक्रिय–साक्षी–भाव

कुछ और नहीं करना है। न–करना सीखना है। साक्षी–भाव सीखना है। तुम जरूर ऊब रहे होओगे जिंदगी से क्योंकि बिना इस भीतर की साक्षी चेतना के जिंदगी निश्चित ही ऊब हो जाती है, बड़ी ऊब हो जाती है। सब बासा–बासा लगता है। बेस्वाद! जैसे बहुत दिन बुखार के बाद भोजन लगता है, ऐसी जिंदगी लगती है और यह बुखार बहुत दिन पुराना है, जन्मों–जन्मों पुराना है।

61. भीतर ध्यान, बाहर प्रेम

मैं कहता हूं, ध्यान करो, प्रेम करो। दो शब्द याद रखो– भीतर ध्यान, बाहर प्रेम, बस सब हो जाएगा। जब अकेले रहो तो ध्यान में डूब जाओ, तब ऐसे अकेले हो जाओ कि भूल ही जाओ कि संसार है, आंख बंद हो जाएं, विचारों को छोड़ दो; चलते भी हों तो चलते रहें, लेकिन तुम उनसे पृथक हो जाओ, अलग हो जाओ, तुम अपना तादात्म्य छोड़ दो। चलते हों चलते रहें, जैसे रास्ते पर भीड़ चलती है। शोरगुल चलता है, चलने दो, लेकिन तुम अब उनके साथ अपने को जोड़ो मत। तुम धीरे–धीरे विलग होकर दूर खड़े हो जाओ। तुम अपने साक्षीभाव में जीओ। और जब कोई पास हो, तब प्रेम बहाओ। जब अकेले, तब ध्यान में डुबकी लगाओ; और जब कोई पास हो तो प्रेम बहाओ।

62. ज्ञान मुक्त चैतन्य

ज्ञान से मुक्ति कठिन नहीं है, अत्यंत सरल है। शास्त्र से मुक्ति कोई साधना नहीं मांगती– सिर्फ सूझ, थोड़ी–सी समझ थोड़ी–सी आंख का खुलना। उधार काम नहीं आता, निजता में ही कुछ घटता है तो काम आता है। न तो तुम मेरी आंख से देख सकते हो, और न तुम मेरे पैर से चल सकते हो, न ही मेरा ध्यान तुम्हारा ध्यान बन सकता है न मेरी समाधि तुम्हारी समाधि बन सकती है। फिर मुझे सुनने से लाभ क्या? इतना ही लाभ है, कि जहां से ये शब्द आ रहे हैं, उस स्रोत को जगाने की तुम्हारे भीतर एक प्रबल कामना पैदा हो जाए। कृष्ण के शब्द सुनकर तुम्हारे भीतर एक अदम्य वासना जगे– कि ऐसी चेतना मेरे भीतर भी हो, जहां ऐसे फूल खिलते हैं। बुद्ध के साथ बैठकर तुम्हारे भीतर यह भाव जगे, उमगे, कि कब मेरे भीतर बुद्धत्व होगा। मैं अपना इशारा, तुम्हें चांद की तरफ उठा रहा हूं अंगुली, कि देखो चांद। मेरी अंगुली को मत पकड़ लेना। अंगुली शास्त्र है। अंगुली को जाने दो, चांद को देखो। चांद न मेरा है न तुम्हारा। न चांद किन्हीं अंगुलियों से बंधा है। न सुंदर अंगुलियां न कुरूप अंगुलियां, न ये अंगुलियां, न वे अंगुलियां। चांद सभी अंगुलियों से मुक्त है।

सत्य कुरान, बाइबिल, वेद, धम्मपद– सबसे मुक्त है। और यद्यपि सारी अंगुलियां उसी सत्य की तरफ इशारा कर रही हैं, मगर अंगुलियों को मत पकड़ लेना। लोग बच्चों जैसे हैं, वे अंगुलियों को चूस रहे हैं। सोचते हैं, अंगुलियां चूसने से पोषण मिलेगा! उठाओ आंखें चांद की तरफ– पोषण बरस रहा है, अमृत बरस रहा है। खोलो आंखें चांद की तरफ। चांद से जुड़ो। चांद को उतरने दो तुम्हारे भीतर, झलकने दो तुम्हारे भीतर। और चांद झलक सके, इसके लिए अपने भीतर निर्विचार करो। अपने भीतर से धूल झाड़ो। दर्पण को साफ करो। मन का दर्पण साफ–अर्थात् ध्यान। मन के दर्पण में चांद का प्रतिबिंब बन गया– अर्थात् साक्षात्कार।

63. ज्ञान का परिणाम

अज्ञान भोग है। ज्ञान त्याग है। त्याग किया नहीं जाता। वह करना नहीं पड़ता है, वह हो जाता है। वह ज्ञान का सहज परिणाम है।

64. जीवन–स्वीकार

हर वासना से प्रार्थना तक पहंचने का उपाय है। खुदाई ठीक से करो। मैं तुम्हें जीवन–स्वीकार का धर्म दे रहा हूं। इसमें इनकार नहीं, जरा भी इनकार नहीं। मैं तुम्हें प्रामाणिक मनुष्य होने की कला सिखा रहा हूं। तुम्हें अब तक अप्रामाणिक होने की बातें बताई गई हैं। अब तक तुम्हें जबरदस्ती अपने को कुछ बना लेने की चेष्टा सिखाई गई है। मैं तुमसे कह रहा हूं: सहजता से तुम हो जाओगे जो तुम होना चाहते हो। सहजता धर्म होना चाहिए। सहज–योग ही एकमात्र योग होना चाहिए।

65. प्रभु का दिया– सब शुभ

मेरा संदेश छोटा सा हैः आनंद से जीओ! और जीवन के समस्त रंगों को जीओ, सारे स्वरों को जीओ। कुछ भी निषेध नहीं करना है। जो भी परमात्मा का है, शुभ है। जो भी उसने दिया है, अर्थपूर्ण है। इसमें से किसी भी चीज का इनकार करना, परमात्मा का ही इनकार है, नास्तिकता है। और तब एक अपूर्व क्रांति घटती है! जब तुम सबको स्वीकार कर लेते हो और आनंद से जीने लगते हो तो तुम्हारे भीतर रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू होती है। तुम्हारे भीतर की रसायन बदलती है––क्रोध करुणा बन जाती है; काम राम बन जाता है। तुम्हारे भीतर कांटे फूलों की तरह खिलने लगते हैं।

66. चेतना की शराब

अंगूर की शराब शरीर के पार नहीं जा सकती। लेकिन और भी शराबें हैं, जो देह के पार जाती हैं। वही तुम्हें पिला रहा हूं। संगीत की भी शराब है, मौन की भी शराब है, ध्यान की भी। और जो श्रेष्ठतम है, उसे वेदों ने सोमरस कहा है। सदियां हो गईं, न मालूम कितने लोग सोमरस की तलाश में रहे हैं! वैज्ञानिक हिमालय की खाइयों में, पहाड़ियों में, सोमरस किस पौधे से पैदा होता था, उसकी अनथक अन्वेषणा करते रहे हैं। अब तक कोई जान नहीं पाया कि सोमरस कैसे पैदा होता था? सोमरस क्या था?

वे जान भी नहीं पाएंगे। सोमरस स्थूल बात नहीं है। सोमरस तो ऋषियों के पास, उनकी सन्निधि में, उनके मौन में, उनके ध्यान में लयबद्ध हो जाने से मिलता था। वह किन्हीं पौधों से नहीं मिलता। वह किन्हीं फलों से नहीं मिलता। वह किन्हीं फूलों से नहीं मिलता। वह तो जिनकी चेतना का कमल खिला है, उनसे जो उठती है सुवास, उनसे जो गंध उठती है, उनसे जो आलोक बिखरता है, उससे मिलता है।

67. जहां प्रेम, वहां परमात्मा

मैं गीत सिखाता हूं। मैं संगीत सिखाता हूं। मेरा संदेश एक ही है, आनंदः उत्सव, महोत्सव। और उत्सव-महोत्सव को सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता, केवल जीवनचर्या हो सकती है यह। तुम्हारा जीवन ही कह सकेगा। ओंठों से कहोगे, बात थोथी और झूठी हो जाएगी। प्राणों से कहनी होगी। श्वासों से कहनी होगी। और जहां आनंद है वहां प्रेम है; और जहां प्रेम है वहां परमात्मा है।

68. सत–चित–आनंद

पहले तुम्हें अनुभव होगा शरीर के छूटने का, फिर धीरे–धीरे अनुभव होगा मन के छूटने का। फिर तीसरी अनुभूति होगी स्वरूप की। और फिर द्वार खुल जाएंगे रहस्य के। उस रहस्य को जिन्होंने जाना है, काम चलाने के लिए नाम दिया है––सच्चिदानंद। सत, चित और आनंद, इन तीन चीजों का अनुभव होगा।

जो है उस अवस्था में, वही एकमात्र सत्य है, शेष सब सपना है। जो है उस अवस्था में, वही एकमात्र चैतन्य है, बाकी सब मूर्च्छा है। जो है उस क्षण में, वही एकमात्र आनंद है, बाकी तुम्हारे सुख भी दुख के ही नाम हैं, बस दुख की ही लीपापोती है,

69. स्वाभाविक चेतना

सहज का अर्थ होता हैः जहां चेतना परिपूर्ण स्वाभाविक हो गई, सारे बंधन गिर गए, सारी जंजीरें गिर गईं। जंजीरें सूक्ष्म हैं, दिखाई पड़ने वाली नहीं हैं। लेकिन हैं जरूर। हर आदमी बंधा है। और जब भी कोई व्यक्ति यहां बंधन के बाहर हो जाता है तो बुद्ध हो जाता है, महावीर हो जाता है, मुहम्मद हो जाता है, जीसस हो जाता है, सरहपा और तिलोपा हो जाता है।

70. सदगुरु को खोजो

तुम पत्थरों के सामने पूजा कर रहे हो। किसी सदगुरु को खोजो। पत्थर तुम्हें झकझोर नहीं सकते। पत्थर तुम्हें जगा नहीं सकते, खुद ही सोये हुए हैं। पत्थर तो निद्रा की आखिरी अवस्था है। पत्थरों के सामने दीये जला रहे, समय गंवा रहे। किसी सदगुरु को खोजो। कहीं जहां चैतन्य प्रगट हुआ हो, जहां दीया जल गया हो––वही तुम्हें जगा सकता है। जागा हुआ तुम्हें जगा सकता है।

71. परम सत्य अंतर्आकाश

आकाश न कभी शुद्ध होता न अशुद्ध। देखा तुमने? काले बादल घिरते हैं तो आकाश काला नहीं हो जाता। और गोरे बादल घिरते हैं तो आकाश गोरा नहीं हो जाता। बादल आते हैं और जाते हैं, आकाश वैसा का वैसा। उसकी निर्दोषता, उसका कुंवारापन अखंड है। ऐसा ही आकाश तुम्हारे भीतर है–चैतन्य का। वह भी अखंड है। वहां भी न कोई गुण है, न कोई दोष है। इसी को कहा तिलोपा ने "परम सत्य"।

और जब तक इसे न जान लो, रुकना मत। तब तक छोटी–मोटी बातों को सत्य मानकर मत रुक जाना। परम सत्य को न जान लो तब तक समझना कि अभी यात्रा शेष है, अभी और चलना, और चलना; अभी और चुकाना। और जो भी चुकाना पड़े चुकाना। अगर जीवन से भी मूल्य चुकाना पड़े तो चुकाना क्योंकि असली जीवन तभी शुरू होता है जब परम सत्य उपलब्ध हो जाता है।

72. तन–मन के पार

'यह मेरा यह तेरा' छोड़ दो। यह मेरा–तेरा, मैं–तू छोड़ दो। यह भेद जाने दो। चित्त क्या है? अचित्त क्या है? चित्त है तुम्हारे भीतर विचार की प्रक्रिया और अचित्त है तुम्हारा तन, तुम्हारी देह। चित्त यानी चैतन्य। अचित्त यानी तुम्हारे भीतर जो जड़ देह है। न तो तुम देह हो और न तुम मन हो। तुम तन–मन दोनों के पार हो। न तो तुम गंगा हो, न तुम यमुना हो; तुम सरस्वती हो। उस तीसरे की याद करो। और धीरे–धीरे उस तीसरे के ही साथ लीन हो जाओ। उसी तीसरे में प्रतिष्ठित हो जाओ।

73. चैतन्य का देश?

ऋषि तो अपनी देह से भी अपना तादात्म्य नहीं करता, तो अपने देश से कैसे करेगा? जो अपनी देह से, इतनी निकट जो मिट्टी है, उससे भी अपने को भिन्न मानता है, तो पृथ्वी की मिट्टी... उससे तो अपने को भिन्न मानेगा ही, जानेगा ही।

कोई ऋषि भारतीय नहीं होता, न कोई ऋषि ईरानी होता है, न अरबी होता है। ऋषि का तो जन्म होता है साक्षी-भाव में। साक्षी के शिखर पर सारे तादात्म्य छूट जाते हैं-देह के, जाति के, वर्ण के, रंग के, मन के। वहां तो केवल रह जाती है झलकती हुई एक चैतन्य की ज्योति। चैतन्य का कोई देश है, कोई अपना है, कोई पराया है? चैतन्य तो सर्वव्यापी है।

74. समत्व योग

मैंने सबसे बड़ी संपत्ति 'सम-भाव' को जाना है। समत्व अद्वितीय है। आनंद केवल उसे ही मिलता है, जो उस दशा को स्वयं में आविष्कृत कर लेता है। वह स्वयं के परमात्मा होने की घोषणा है। कृष्ण का आश्वासन है 'समता ही परमेश्वर है।'

75. दीक्षा का सारसूत्र

मेरी दीक्षा यही है तुम्हें : अपने आनंद से जीओ। इतना ही पर्याप्त होगा कि तुम किसी दूसरे के आनंद में बाधा न बनो। इतना ही पर्याप्त होगा कि तुम अपने आनंद का नृत्य नाचो, और अपना गीत गाओ। शायद तुम्हारे आनंद की तरंगें दूसरों को भी लग जाएं और वे भी आनंदित हो जाएं। शायद थोड़ी गुलाल तुमसे उड़े, और वे भी लाल हो जाएं। थोड़ा रंग तुमसे छिटके, और वे भी रंग जाएं।

76. प्रार्थना

प्रार्थना क्या है? --प्रेम और समर्पण। और, जहां प्रेम नहीं है, वहां प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना का कोई ढांचा नहीं होता है। वह तो हृदय का सहज अंकुरण है। जैसे पर्वत से झरने बहते हैं, ऐसे हीं प्रेम-पूर्ण हृदय से प्रार्थना का आविर्भाव होता है।

77. चेतना के आकाश में उड़ान

मैं भी मृत्यु सिखाता हूं-मगर एक और भांति की मृत्यु। मृत्यु, जैसा जीसस ने कहा। जीसस ने कहाः जिन्हें प्रभु के राज्य में प्रवेश करना है, उन्हें पुनर्जन्म लेना होगा। उन्हें मरना होगा एक तल पर और जागना होगा दूसरे तल पर। उन्हें शरीर से मुक्त होना होगा और चेतना के आकाश में पंख फैलाने होंगे। मैं उसे हीं वास्तविक मृत्यु कहता हूं।

देह तो मरती रहती है; अपने-आप हीं मरती रहती है। उसे मारना तो मारे हुए को मारना है। मारना है मन को, जो कि मर-मरकर भी नहीं मरता; जो हर मृत्यु के पार फिर नये जन्मों का सिलसिला शुरू कर देता है।

78. चैतन्य का अमृत दीया

मैं तुम्हें जागकर जीने को कहता हूं। ऐसे जागकर जीयो कि जब मौत आये तब भी तुम जागे रहो। मौत भी ध्यान में घटित हो। तुम वहां जागे रहो और यहां मौत घटित हो। वहां चैतन्य का दीया जलता रहे और शरीर से छुटकारा हो। बस अगर तुम जागकर मर सको, तो फिर दोबारा न जन्मोगे न मरोगे। फिर अमृत से तुम्हारा संबंध हो गया।

79. चेतना का धूलरहित दर्पण

ध्यान उस निर्मल दशा का नाम है, जब ज्ञान की कोई धूल तुम्हारी चेतना के दर्पण पर नहीं बचती। मैं तुम्हें कोई धारणा नहीं सिखा रहा हूं। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि ईश्वर है। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि मोक्ष है। मैं तो यह भी नहीं कहता कि मानो कि पुनर्जन्म है। मैं तो कहता ही नहीं कि कुछ मानो।

80. उत्सवपूर्वक विदाई

अगर तुम उत्सवपूर्वक विदा दे सको तो तुमने उस चेतना को जो इस देह से मुक्त हो गई है, आगे जाने के लिये संबल दिया, सहारा दिया, पाथेय दिया। और तुमने उसे इस जगत से, इस जीवन से, इस जीवन के संबंधों से मुक्त होने की सामर्थ्य भी दी; नहीं तो मन पीछे लौट–लौटकर देखेगा। तुम रोओगे, तुम पीड़ित और परेशान होओगे, तो वह आत्मा लौट–लौट तुम्हारे आस–पास चक्कर काटेगी। तुम उसे भटकाओगे। तुम उसे उलझा दोगे।

81. चेतना सदा जागी रहती

जब नशे में तुम हो, तब तुम दो हिस्सों में भीतर बंट जाते हो; क्योंकि एक तो तुम्हारे भीतर तत्व है, जो कभी भी नशे में नहीं हो सकता; तुम्हारी चेतना कभी भी बेहोश नहीं हो सकती। नशा तुम्हारे शरीर में जाता है, मन में जाता है आत्मा में नहीं जा सकता। जैसे ही नशा तुम्हारे भीतर प्रवेश करता है, तुम दो हिस्सों में बंट जाते हो–तुम्हारी आत्मा अलग, तुम्हारा शरीर, मन अलग। और शरीर, मन तो एक ही हैं, उनमें बहुत भेद नहीं है; वे एक ही तत्व के सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं। तुम भीतर बंट जाते हो और सब कंपने लगता है। जब तुम भीतर कंपने लगते हो, बाहर सब कंपने लगता है।

82. उन्मनी चेतना

मन दीया मन पाइये, मन बिन नहिं होइ।

मन उन्मन उस अंड ज्यूं, अनल आकासां जोइ।।

जैसे आकाश हर चीज में छिपा है, चाहे दिखे और चाहे न दिखे...आकाश दिखता कहां है? हवा के कण–कण में आकाश है। अग्नि के कण–कण में आकाश है। न तो अग्नि आकाश को जला सकती है, न हवा आकाश को उड़ा सकती है। पानी के कण–कण में आकाश है; न पानी आकाश को बहा सकता है। जैसे प्रकाश सब में छिपा है, ऐसे वह परम भगवत् सत्ता सबमें छिपी है। वह तुम में भी छिपी है। उस परम भगवत् सत्ता को कबीर ने जो नाम दिया है, वह बड़ा कीमती है––वह वही नाम है, जो झेन फकीर जापान में देते हैं। झेन फकीर उस अवस्था को नो–माइंड कहते हैं। कबीर ने उस अवस्था को "उन्मन" कहा है।

यह एक ऐसी अवस्था है चेतना की, जहां मन है ही नहीं।

83. अस्तित्व के दो दरवाजे

मैं तो दो ही शब्दों पर जोर देता हूं, प्रेम और ध्यान। क्योंकि मेरे लेखे अस्तित्व के मंदिर के दो ही विराट दरवाजे है, एक का नाम प्रेम और दूसरे का नाम ध्यान। चाहो तो प्रेम से प्रवेश कर जाओ। चाहो तो ध्यान से प्रवेश कर जाओ। शर्त एक ही है, अहंकार दोनों में छोड़ना होता है। ध्यान में भी अहंकार को छोड़ना होता है, प्रेम में भी अहंकार को छोड़ना होता है। तो चाहो तो यूँ कह लो कि एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक तरफ प्रेम, एक तरफ ध्यान।

84. जतन यानी भीतरी सुरति

कबीर कहते हैं कि रहो इस संसार में ऐसे, जैसे पनघट से आती स्त्री घड़े को रखती है जतन से। जाओ दुकान पर, लेकिन सम्हालो चेतना को। घूमो बाजार में, मगर खो मत जाओ, सम्हालो अपने को। धन हो, स्त्री हो–सम्हालो अपने को। जतन का अर्थ हैः एक भीतरी सुरति।

85. चैतन्य की ज्योति

तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोई।

सब विधि सहजे पाइये, जो मन जोगी होई।।

सवाल शरीर से कुछ करने का नहीं है। सारा सवाल होश के जगत में कुछ करने का है। तो कितना ही तुम बांधो शीर्षासन, सिद्धासन, सर्वांगासन करो, कितने ही बंध साधो, कितना ही शरीर को आड़ा-तिरछा करो--वह बात बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है भीतर चैतन्य का बढ़ना--चैतन्य की बढ़ती ज्योति। तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोई।

86. सच्चिदानंद

मनुष्य के भीतर जो जीवन है, वह अमृत्व की किरण है– जो बोध है, वह बुद्धत्व की बूंद है और जो आनंद है, वह सच्चिदानंद की झलक है।

87. परमात्मा की भांति जियो

साक्षी की भांति जो जीता है वह परमात्मा की भांति जीता है। और वही परम जीवन है, वही आनंद है।

८८. शून्य का संगीत

जब तुम परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तब भी तुम्हें धुन सुनाई पड़ती रहेगी। वह शून्य की धुन होगी। वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

८९. शुद्ध चैतन्य की वाणी

तथ्य तो तुम्हारी आंख से तथ्य बनता है; तुम्हारा दृष्टिकोण उसमें सम्मिलित हो गया। जब तक तुम हिंदू हो, तुम सच नहीं हो सकते; जब तक तुम मुसलमान हो, सच नहीं हो सकते क्योंकि तुमने कुछ धारणाएं पहले से ही मान लीं जो तुम्हें सच न होने देंगी। तुम जब न हिंदू की तरह बालोगे न मुसलमान की तरह बालोगे; जब तुम एक शुद्ध चैतन्य की तरह बोलोगे, तब तुम सच धर्म से बोले। तब तुम अपनी वास्तविकता से बोले। तब तुमने न तो हिंदू के ढंग से कहा, न मुसलमान के ढंग से कहा। तब तुमने शुद्ध चैतन्य के ढंग से कहा। और यह बड़ी अलग बात है। यह बड़ी भिन्न बात है।

९०. कौन भिखारी, कौन सम्राट?

इच्छाएं दरिद्र बनाती हैं। उनसे ही याचना और दासता पैदा होती है। फिर, उनका कोई अंत भी नहीं है। जितना उन्हें छोड़ो, उतना ही व्यक्ति स्वतंत्र और समृद्ध होता है। जो कुछ भी नहीं चाहता है, उसकी स्वतंत्रता अनंत हो जाती है।

९१. शुद्ध चैतन्य

वास्तविक अध्यात्म, अनुभवों का आयाम नहीं है। वहां अनुभव करने को कुछ नहीं है। बस तुम हो... या सच कहो तो तुम भी नहीं, वहां केवल शुद्ध चैतन्य है।

92. अहंकार अनेक; आत्मा एक

अहंकार सबके अलग–अलग हैं; आत्मा एक है। आत्मा तो उस तत्व का नाम है जिसे तुम जन्म के साथ ले कर आए और अहंकार उस तत्व का नाम है जिसे तुमने ही जीवन बनाया; जिसे तुम लाए न थे; जिसे तुमने ही संवारा–सजाया। तुम्हें तो परमात्मा ने बनाया है, लेकिन अहंकार के निर्माता तुम हो। तो, एक तो संसार है परमात्मा का, उसका तो तुम्हें तो कुछ पता नहीं; एक संसार है तुम्हारे अहंकार का, बस उसमें ही तुम जीते हो, उसी में समाप्त हो जाते हो।

अहंकार का अर्थ है: तुम जान ही न पाए उसे जो तुम थे। इसके पहले कि तुम जानते अपने कोरेपन को, तुमने लिखावट से स्वयं को भर लिया। इसके पहले कि तुम जानते निर्मलता को–चैतन्य को, तुमने बहुत कूड़ा–कबाड़ इकट्ठा कर लिया।

93. दुख की जड़– आकांक्षाएं

दुख क्या है? कुछ पाने की और कुछ होने की आकांक्षा ही दुख है। दुख कोई नहीं चाहता, लेकिन आकांक्षाएं हों, तो दुख बना ही रहेगा। किंतु, जो आकांक्षाओं के स्वरूप को समझ लेता है, वह दुख से नहीं, वह आकांक्षाओं से ही मुक्ति खोजता है। और, तब दुख के आगमन का द्वार अपने आप ही बंद हो जाता है।

94. मध्य को साधो

जैसे नदी के दो किनारे होते हैं, ऐसे चेतना की अंतर्मुखता और बहिर्मुखता है। जैसे श्वास भीतर आती है, बाहर जाती है, ऐसे ही चेतना भी भीतर जाती है बाहर आती है। जिसने दोनों के मध्य अपने को साध लिया, वही सिद्ध है। जो एक में जकड़ गया वही पंगु है।

95. झुको परमात्मा के सामने

झुक जा और चढ़ा दे अपने को। यह डर शुभ है कि तेरे पास चढ़ाने को कुछ नहीं है। लेकिन यहीं तो भक्त की भाव–दशा है, यहीं तो चढ़ाने की कला है कि कुछ चढ़ाने को नहीं है और चढ़ाता हूं: खाली हाथ हूं! परमात्मा तुझे भर देगा और नया कर देगा।

एक जन्म है जो मां–बाप से मिलता है, वह शरीर का जन्म है। एक जन्म है जो चैतन्य से मिलता है; वह आत्मा का जन्म है।

जो परमात्मा के सामने झुका, वही आत्मवान हुआ। जब तक तुम उसके सामने नहीं झुके हो, तब तक आत्मा सिर्फ एक सिद्धांत है। तुम्हें उसका कोई पता नहीं। तुम्हारे भीतर अभी उसका अविर्भाव नहीं हुआ। अभी तुम आत्महीन हो। अभी तुम शरीर हो, मन हो, पर आत्मा नहीं। अभी तो बीज टूटा नहीं; अभी बीज अंकुर नहीं बना। अभी बीज पर वृक्ष नहीं आया। अभी वृक्ष पर फूल–फल नहीं लगे। अभी आत्मा संभावना है तुम्हारी, वास्तविकता नहीं।

96. सोना और जागना

जाल हैं पचास, जान है एक! एक जाल से बचे नहीं कि दूसरे में उलझ जाओगे। और कई बार तो तुम समझोगे कि एक जाल से बचने का उपाय ही यही है कि दूसरे जाल में उलझ जाओ, तो पहले जाल से बच जाओगे।

लेकिन जिस व्यक्ति को जीवन में क्रांति ही लानी हो, सच में ही क्रांति लानी हो, वह एक जाल से दूसरे जाल में नहीं उलझता; बल्कि वह रुक कर सोचता है कि सभी जालों का मूल आधार क्या है। मूल आधार से बचने की फिक्र करना। पत्ते–पत्ते मत जाना, जड़ काटना।

97. धार्मिक क्रांति का सूत्र

जो शून्य होकर परमात्मा के सामने झुका, वह पूर्ण हो जाता है– परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है उसमें। जहां तुमने अहंकार को बिठा रखा था, उसी जगह उसका सिंहासन बन जाता है। ऐसी क्रांति का नाम ही धार्मिक क्रांति है। और धार्मिक क्रांति एकमात्र क्रांति है, बाकी सब क्रांतियां क्रांति के धोखे हैं।

98. रूपांतरण का कीमिया

कम से कम मां, पिता, गुरु, भगवान... माता–पिता जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया; गुरु जिससे तुम्हारा दूसरा जन्म होगा; परमात्मा जो कि तुम्हारा ही आत्यंतिक स्वरूप है– अगर इनसे भी तुम संकोच करते हो, फासला रखते हो, तो फिर तुम कहां शरण पाओगे? इनके सामने तो सब संकोच छोड़ देना। इनके सामने नग्न हो जाना। इनके सामने क्या छिपाना है? माता–पिता के सामने क्या छिपाना है? नग्न तुम पैदा हुए थे। वे भलीभांति तुम्हें जानते हैं।

गुरु से क्या छिपाना है? अगर गुरु से छिपाया तो रूपांतरण किसके द्वारा होगा फिर? जो तुम छिपाओगे, वह बच जाएगा, रूपांतरण न होगा। गुरु के सामने तो पूरा खुल जाना है। सब वस्त्र उघाड़ देने हैं। कुछ बचाना नहीं है भीतर। कुछ भी छिपाना नहीं है भीतर। चेतन–अचेतन सब परतें सामने कर देनी हैं कि अब जो तेरी मर्जी। अब जो तू चाहे, कर।

99. जीवन : एक खेल

संन्यास का अर्थ है कि जीवन को किसी काम की भांति नहीं, वरन एक खेल की भांति जीना। जीवन नाटक से ज्यादा न रह जाये– बन जाये एक अभिनय मात्र!

100. चयन पर निर्भर

सत्य और स्वयं में जो सत्य को चुनता है, वह सत्य को पा लेता है और स्वयं को भीं। और, जो स्वयं को चुनता है, वह दोनो को खो देता है।

101. सदा से ही खुले द्वार

'मैं'से बड़ी और कोई भूल नहीं। प्रभु के मार्ग में वही सबसे बड़ी बाधा है। जो उस अवरोध को पार नहीं करते, सत्य के मार्ग पर उनकी कोई गति नहीं होती। प्रभु के द्वार पर हमारे 'मैं' का हीं ताला है। जो उसे तोड़ देते हें, वे पाते हैं कि द्वार तो सदा से हीं खुले थे!

102. परस्पर–तंत्रता

अहंकार कीं दो दृष्टियां हो सकतीं हैं। अगर कहा कि दूसरे जिम्मेवार हैं–तो अहंकार को बचा लिया। अगर कहा, मैं जिम्मेवार हूं, तो अहंकार पर पूरा दोष थोपा। पहला व्यक्ति अधार्मिक रहेगा, दूसरा व्यक्ति धार्मिक हो जाएगा। और एक तीसरी स्थिति हैः अहंकार के पार, जहां मैं बिल्कुल मिट जाता है, सिर्फ चैतन्य बचता हैः वहां दिखाई पड़ता हैः यह परस्पर–तंत्रता है। यहां दो हैं हीं नहीं, यहां एक हीं तंत्र है। उसी को तो हमने परमात्मा कहा, ब्रह्म कहा, अद्वैत कहा। दो नहीं हैं, एक ही अस्तित्व है। और यहां वृक्ष को हिलाओ तो आकाश के तारे हिलते हैं। सब जुड़ा है। पत्थर फेंको झील में, जरा सी जगह में गिरता है, पर लहर उठती है और अनंत तक चली जाती है। दूर–दूर के किनारे भी उस लहर से अपरिचित न रहेंगे। वह लहर जा कर अनंत काल में अनंत दूरियों को छूएगीं।

103. अनुकरण में भटकन

बुद्धपुरुषों से यह सीखना कि तुम अपने मार्ग पर कैसे चलो। बुद्धपुरुषों से अनुकरण मत सीखना। उनसे तुम यह सीखना कि तुम्हारा बुद्धत्व कैसे जगे। आंख बंद करके अंधे की भांति उनके पीछे मत चलना। क्योंकि उनका मार्ग, तुम्हारा मार्ग कभी भी होनेवाला नहीं है। इसलिए जो अनुकरण करेगा, वह भटक जाएगा। यह पहली बात समझ लें।

104. अब भीतर उतरता है

कितने जन्मों से तुम भटक रहे हो! कितने कांटे छिद गए हैं। घाव ही घाव हो गए हैं। तन, प्राण –सब चीथड़ों जैसे हो गए हैं। लेकिन तुम पागल की तरह भटकते हो। एक जंगल में नहीं पाते तो दूसरे जंगल में भटकते हो। दूसरे जंगल में नहीं मिलता तो तीसरे जंगल में भटकते हो। एक लोभ में नहीं मिलता तो दूसरे लोभ, एक पद में नहीं मिलता तो दूसरे पद की आकांक्षा। यहां नहीं मिलता तो वहां भाग रहे हो! और एक जगह पर तुमने कभी नहीं खोजा कि तुम बैठ गए होते; आंख बंद की होती; थिर हुए होते; जीवन की चेतना को विश्राम में उतारा होता और अपने भीतर झांका होता। दस दिशाएं हैं, सब में दौड़ लिया अब ग्यारहवीं दिशा शुरू होती है। आदमी आंख बंद कर लेता है। शरीर शून्य हो जाता है। अब भीतर उतरता है– अपने ही कुएं में; अपने ही चेतना की अतल गहराई में।

105. उद्देश्यपूर्ण जीवन

जीवन एक कला है। वह कैसे भी जी लेने का नाम नहीं है। वस्तुतः जो सोद्देश्य जीता है, वही केवल जीता है।

106. ज्ञान नहीं, आनंद खोजो

तुम तो जागरण की एक छोटी-सी घटना हो। जरा-सी चेतना उठी है। जरा-सा होश आया है। एक किरण उतरी है। इस किरण के सहारे तुम इस विराट को कैसे जान सकोगे? असंभव है। और अगर यह अहंकार तुम्हारे मन में आ जाए कि इसे जान कर रहेंगे तो तुम्हें जो एक अवसर मिला था आनंद का, वह भी तुम खो दोगे।

ज्ञान मत खोजना, आनंद खोजना। फर्क विज्ञान और धर्म का है।

107. साधु कौन?

महावीर से कोई पूछता हैः साधु कौन? तो महावीर कहते हैंः असुत्ता- जो सोया हुआ नहीं, जागा हुआ है। पूछता है कोईः असाधु कौन? तो महावीर कहते हैंः सुत्ता- जो सोया हुआ है। महावीर ने न क्रोध की बात कही, न काम की बात कही, न लोभ की; जड़ की बात कही- सोना और जागना; होश और बेहोशी- चैतन्य और अचेतना।

108. चुनावरहित चेतना

आस्तिक और नास्तिक साथ-साथ जीते हैं; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक। धार्मिक व्यक्ति कहता हैः हां और न के ऊपर उठना है, द्वंद्व के पार जाना है, द्वंद्वातीत होना है। तो मैं चुनूंगा नहीं। मैं चुनावरहित चेतना में जागूंगा। मैं हां को भी वरण नहीं करूंगा, न को भी वरण नहीं करूंगा; मैं किसी पक्षपात को ओढूंगा नहीं, मैं निष्पक्ष रहूंगा। मैं मन के किसी जाल में पड़ने को नहीं हूं। मैं मन के किसी भुलावे में अब न आऊंगा।

109. होशपूर्ण सरलता

सरलता अगर बुद्धू होकर हो तो वह भी क्या सरलता? और अगर बुद्धिमान होकर चालाक हो गए तो वह कैसी बुद्धिमानी? बुद्धिमान होकर कोई सरल हो– कभी कोई बुद्ध पुरुष ऐसा ही होता है– बुद्धिमान होकर सरल! बुद्धिमत्ता अप्रतिम होती है, आखिरी होती है; लेकिन चालाकी नहीं होती। सरलता होती है छोटे बच्चे जैसी, बुद्धिमानी होती है बूढ़े जैसी। प्रौढता वृद्ध की, सरलता बच्चे की।

प्रभु के ऐसे विरले ही भक्त हैं जो बुद्धिमान होते हुए सरल हैं। और यही साधना है। साधना है बुद्धि को, चैतन्य को, होश को; लेकिन सरलता नहीं खो देनी है, सरलता को भी साथ में बचाते चलना है। अन्यथा, मंहगा हो जाएगा। बुद्धिमान तो हो जाओगे, सरलता खो गई– पंडित ही रह जाओगे, प्रज्ञावान न हो पाओगे। बुद्धिमत्ता के साथ सरलता बचे, तभी प्रज्ञा का आविर्भाव होता है।

110. 'मत' से मत बंधो

सत्य को चाहते हो, तो चित्त को किसी 'मत' से मत बांधो। जहां मत है, वहां सत्य नहीं आता। मत और सत्य में विरोध है।

111. मुक्त–जिज्ञासा

सत्य की खोज के लिए मुक्त–जिज्ञासा पहली सीढ़ी है। और, जो व्यक्ति स्वानुभूति के पूर्व ही किन्हीं सिद्धांतों और मतों से अपने चित्त को बोझिल कर लेता है, उसकी जिज्ञासा कुंठित और अवरुद्ध हो जाती है।

112. शून्य ही पूर्ण

बुद्ध, महावीर शून्य की बात करते हैं। कृष्ण, मीरा, चैतन्य, पूर्ण की बात करते हैं। इनमें कुछ विरोध नहीं है, हो ही नहीं सकता। शब्द कितने ही विपरीत हों, इनकी अनुभूति तो एक है। गुणधर्म में तो कोई फर्क नहीं है, क्योंकि गीत एक ही स्रोत से आ रहा है; वह जो चैतन्य की गंगोत्री है, वहीं से आ रहा है। फर्क केवल अभिव्यक्ति में है।

113. निष्कंप चेतना की लौ

सत्य को पाने का सवाल वस्तु से नहीं है, आब्जैक्ट से नहीं है, विषय से नहीं है– सत्य को पाने का संबंध तुम्हारे भीतर के अहर्निश जागरण से है। तुम्हारी चेतना की लौ न कंपे, तुम्हारी चेतना की लौ निष्कंप हो जाए, जैसे कोई हवा का झोंका न आता हो, द्वार–दरवाजे बंद हों, और दीए की लौ अकंप जलती हो। उसीको गीता ने "स्थितप्रज्ञ" की अवस्था कहा है, जहां प्रज्ञा की ज्योति स्थिर हो गई। उस स्थिर दशा में कोई भी चीज कंपती नहीं है। उस स्थिर दशा में तुम जो जानते हो, वही विद्या है। फिर तुम जैसा जानते हो, वैसा ही है; फिर वह सदा–सदा के लिए, चिरकाल के लिए वैसा है।

114. अंतर्तम में रमो

संन्यास की वास्तविक धारणा केवल इतनी है कि तुम जानो कि तुम मन नहीं हो, और संसार तुम्हारे मन का ही फैलाव है। तुम द्रष्टा हो। देखो मौज से अपने भीतर बैठ कर। देखो सब राग–रंग। देखो पतझड़–वसंत। जब मैं कहता हूं मन से मुक्त हो जाने के लिए तो मेरा कुल अर्थ इतना ही है कि तुम्हारी ऊर्जा मन से अपना तादात्म्य तोड़ दे और चैतन्य में विराजमान हो जाए।

115. प्रार्थना नहीं, ध्यान

महावीर की भाषा ध्यान की है, पूजा की नहीं। और ध्यान और प्रार्थना में यही फर्क है। प्रार्थना में दूसरा चाहिए। ध्यान में दूसरे को मिटाना है, भुलाना है। इस तरह भुला देना है कि बस अकेले तुम ही बचो, शुद्ध चैतन्य बचे; दूसरे की रेखा भी न रहे, छाया भी न पड़े। पर दोनों ही रास्तों से वहीं पहुंचना हो जाता है। जो समर्पण से बहते हैं, धारा बनते हैं, आखिर सागर से बादलों पर चढ़ कर गंगोत्री पहुंच ही जाते हैं। उन्होंने सुगम मार्ग चुना।

116. एक–एक कदम से अनंत यात्रा

यात्रा तो लंबी है। मार्ग तो कठिन है। चढ़ना है पर्वत–शिखर की ओर। उतार आसान होते हैं, चढ़ाव कठिन होते हैं। और यह तो अंतिम चढ़ाव है। चैतन्य के शिखर को छूना; इससे बड़ी न कोई यात्रा है, न कोई बड़ा अभियान है। लेकिन घबड़ाना मत। कितनी ही हो दूर मंजिल, चलते–चलते कट जाती है। एक–एक कदम चल कर। लाओत्सु ने कहा है– दस हजार मीलों की यात्रा पूरी हो जाती है। यही सोच कर कोई बैठ रहे कि इन छोटे–से कदमों से कैसे पहुंच पाऊंगा, तो फिर कोई यात्रा संभव नहीं; छोटी–सी दूरी भी पूरी नहीं हो सकती। प्रत्येक को एक ही कदम तो मिला है। एक बार एक ही कदम तो चल सकते हो। मगर एक–एक कदम चलते–चलते अनंत यात्रा भी पूरी हो जाती है।

117. सिद्धांतों की परतंत्रता

सत्य के आगमन की शर्त है : चित्त की पूर्ण स्वतंत्रता। जिसका चित्त किन्हीं सिद्धांतों में परतंत्र है, वह सत्य के सूर्य के दर्शन से वंचित रह जाता है।

118. चैतन्य के फूल!

यह सारी पृथ्वी जैसे वसंत के आगमन पर दुल्हन बन जाती है, ऐसे ही तुम जब अपने को शून्य कर लेते हो व्यर्थ की वासनाओं से, तो उतरता है एक महावसंत। कहो उसे निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य, परमात्मा, या जो भी नाम तुम्हें प्रिय हो। फूल पर फूल तुम्हारे भीतर खिलते चले जाते हैं–चैतन्य के फूल! और अपूर्व सुगंध उठती है! लेकिन यह वसंत मालिकों के ही जीवन में आता है। भिखमंगों के जीवन में कभी वसंत नहीं आता। संन्यास मालिक बनने की प्रक्रिया है। इसलिए संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का अर्थ है: मालिक। अब वह भिखमंगा नहीं।

119. अनुभव से जन्मती प्रज्ञा

जीवन में सजग होकर चलने से प्रत्येक अनुभव प्रज्ञा बन जाता है। और, जो मूर्च्छित बने रहते हैं, वे द्वार आये आलोक को भी वापस लौटा देते हैं।

120. आत्मा = साक्षी

फिल्म में पर्दे पर दृश्यों को देख कर हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि भूल ही जाते हैं कि हम द्रष्टा हैं; मान ही लेते हैं कि हम इसी के हिस्से हैं। बस, वैसी ही हमारे चित्त की अवस्था है। चित्त भी एक पर्दा है। उस पर विचार चल रहे, वासनाएं चल रहीं, कल्पनाएं चल रही हैं, स्मृतियां चल रहीं हैं– फिल्में चल रही हैं। तुम कौन हो? तुम द्रष्टा हो! तुम मन नहीं हो।

आत्मा मन की सूक्ष्म वैचारिक अवस्था नहीं है। आत्मा है चैतन्य! आत्मा है साक्षी–भाव। आत्मा है केवल साक्षी–भाव। और मन है सारी स्मृतियों का, कल्पनाओं का, वासनाओं का मेला। तुम द्रष्टा हो! तुम्हारे द्रष्टा का तुम्हें स्मरण आ जाए, बस क्रांति होनी शुरू हो गयी। मगर भूल जाते हैं लोग।

121. और कहां पहुंचना है?

अपने भीतर पहुंचना है। अपने अंतर्तम में पहुंचना है! वहां तुम परम शुद्ध हो, वहां तुम परमात्मा हो। मगर वह परमात्म–रूप केवल चैतन्य–रूप है, सच्चिदानंद है, सत् है, चित् है, आनंद है। थोड़े ध्यान में उतरो, ताकि इन संस्कारों से छुटकारा हो सके। संस्कार का अर्थ ही होता है धूल– दर्पण पर जम गयी धूल। हटाओ, पोंछो दर्पण को, ताकि दर्पण उसका प्रतिफलन दे सके, जो है।

122. भगवान व्यक्ति नहीं, गुणवत्ता

हरि कोई व्यक्ति नहीं है। इस भ्रांति में मत रहना कि राम कहीं कोई व्यक्ति है कि जो तुम्हें मिलेगा और कहेगा कि आइए, विराजिए, पधारिए, कि भले आए, बहुत दिन से प्रतीक्षा करता था, कि बड़े सौभाग्य हमारे, कि पलक–पांवड़े बिछाए बैठा था। हरि कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर के संबंध में व्यक्ति की धारणा बिल्कुल छोड़ दो। भगवान व्यक्ति नहीं है, भगवत्ता है; चैतन्य, सत्य, आनंद– ऐसे गुणों का स्मरण करो। यह सारा जगत उसमें व्याप्त है। फूल–फूल पर उसकी छाप है। पत्ते–पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं। मगर व्यक्ति की तलाश बंद कर दो, नहीं तो वह तुम्हें कभी मिलेगा नहीं।

123. मनुष्य : एक जोड़

मनुष्य मृण्मय और चिन्मय का जोड़ है। जो देह का और, उसकी वासनाओं का अनुसरण करता है, वह नीचे से नीचे उतरता जाता है। और, जो चिन्मय के अनुसंधान में रत होता है, वह अंततः सच्चिदानंद को पाता है और स्वयं भी वही हो जाता है।

124. तारी की अद्भुत दशा

कह रहे हैं कबीर कि अब तो मुझे हरि हो जाना है– अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि! अब तो मुझे उसमें अपनी सारी सीमाएं डुबा देनी हैं। अब तो मुझे चैतन्य–रूप हो जाना है। अब तो मुझे सिर्फ साक्षी हो जाना है। तुम्हारे भीतर एक तीसरा तत्व भी है, जो साक्षी है, जो देखता है– देह को, मन को– बस उसके साथ एक हो जाना है। वही साक्षी परमात्मा की किरण है तुम्हारे भीतर। उसी साक्षी को पकड़ लो, तो उसी धागे को पकड़ कर तुम परमात्मा के सूरज तक पहुंच जाओगे। और जब दसवें द्वार पर पहुंचते हो तो तारी लग जाती है। देह का पता नहीं रहता, मन का पता नहीं रहता। सोए हो कि जागे हो, यह भी पता नहीं रहता। नींद जैसा विश्राम और जागरण जैसी ताजगी; दोनों साथ–साथ होती हैं। उसी का नाम तारी है। तारी बड़ी अद्भुत दशा है!

125. असली तीर्थ भीतर

उस मार्ग की जरा–सी भी झलक तुम्हारी समझ में आ जाए तो घर दूर नहीं है। शायद हम पीठ किए खड़े हैं और घर पीछे है और हम आगे ही आगे दौड़े चले जाते हैं। हम घर से दूर ही दूर निकले जाते हैं। घर की ही खोज करते हैं और घर से दूर निकले जाते हैं, क्योंकि पीछे लौट कर देखते ही नहीं। घर शायद भीतर है और हमारी यात्रा बाहर की तरफ है– काशी, काबा, कैलाश... ....सब बाहर। और असली तीर्थ भीतर– वहां, जहां तुम्हारी चेतना का उदगम–स्रोत है। गंगा भागी जाती है गंगासागर की तरफ। वहां नहीं है घर। चलना है गंगोत्री की तरफ। जहां से आए हैं, वहां चलना है, तब घर मिलेगा। मूल उद्‌गम को खोजना है, तब घर मिलेगा।

126. ध्यान–ध्याता–ध्येय सब गए!

जहां द्वैत गया, वहां दर्शन भी गया, द्रष्टा भी गया, दृश्य भी गया। ज्ञान भी गया, ज्ञेय भी गया, ज्ञाता भी गया। ध्यान भी गया, ध्याता भी गया, ध्येय भी गया। जहां द्वंद्व चला गया, जहां दो न रहे, वहां हमारी सारी भाषा व्यर्थ हो गयी।

127. संदेह से परम श्रद्धा तक

जब हृदय बिल्कुल शून्य हो जाता है, तो इस प्रकृति का एक नियम है कि यह शून्य को तत्क्षण भर देती है। जहां भी शून्य होता है वहीं भरने पहुंच जाती है। अगर बाहर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। अगर भीतर का शून्य हो तो भी भर दिया जाता है। भीतर का शून्य परम चैतन्य से भर जाता है।

128. एक मनुष्य की उद्घोषणा

मैं चाहता हूं: मनुष्य एक हो। एक मनुष्य की उद्घोषणा करनी चाहिए। सारी पृथ्वी एक हो। ये विभाजन गिरें। ये भेदभाव गिरें– कौन हिंदू, कौन मुसलमान, कौन ईसाई! चैतन्य की उद्घोषणा करो। अपने भीतर के परमप्रभु की उद्घोषणा करो। उस उद्घोषणा के लिए इन सारे शब्दों को गिरा देना चाहता हूं। इसलिए मेरे संन्यासियों का तुम्हें पता ही नहीं चलेगा– कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ईसाई है, कौन यहूदी है? यहां सारे धर्मों के संन्यासी मौजूद हैं, सारे देशों के संन्यासी मौजूद हैं। लेकिन कोई पूछता ही नहीं– उनकी जाति, उनका धर्म, उनका देश, कुछ लेना–देना नहीं है। हम तो एक ही बात पूछते हैं: ध्यान। बाकी सब बातें गौण, बाकी सब बातें व्यर्थ।

129. खोजना नहीं, खोदना

ईश्वर को खोजना नहीं, खोदना होता है। स्वयं में ही जो खोदते चले जाते हैं, वे अंततः उसे अपनी सत्ता के मूल–स्रोत और चरम विकास की भांति अनुभव करते हैं।

130. स्वर्ण सूत्र

प्रभु को पाने की आकांक्षा से भरो, तो पाप अपने से छूट जाते हैं। और, पापों से ही लड़ते रहते हैं, वे उनमें ही और गहरे धंसते जाते हैं। जीवन को विधायक आरोहण दो, निषेधात्मक पलायन नहीं। सफलता का स्वर्ण सूत्र यही है।

131. थोड़ा स्मरण करो

मोक्ष उपलब्धि नहीं है। उपलब्धि की भाषा अहंकार की भाषा है। मोक्ष तो वह है जो तुम्हें मिला ही हुआ है, तुम भूले–बिसरे बैठे हो। जैसे जेब में तो पैसे पड़े हों और तुम भूल गए। कई बार तुम्हें ऐसा हो जाता है––जो लोग चश्मा लगाते हैं उनको याद होगा––चश्मा तो लगाए हुए हैं और चश्मा खोज रहे हैं। चश्मा लगाकर चश्मे ही को खोज रहे हैं! जिन लोगों की आदतें हैं कलम को कान में खोंस लेने की, वे कान में कलम को खोंस लेंगे और फिर कलम को खोजते फिरेंगे।

बस भूली, बिसर गई बात का थोड़ा स्मरण लाना है। और स्मरण की क्षमता सभी में है। वह हमारे चैतन्य का स्वभाव है। वह चैतन्य की आंतरिक क्षमता है, उसका गुण है। जैसे आग का गुण है गर्म होना और बर्फ का गुण है ठंडा होना, वैसे चैतन्य का गुण है–सुरति, स्मृति। चैतन्य का गुण है–होश, याद। इसलिए व्यर्थ अपने मन को छोटा न करो, ओछा न करो।

132. भीतर की संपदा

बाहर की दुनिया में तो अगर तुम्हारी जेब वजनी होने लगेगी तो किसी की जेब खाली होने लगेगी। कोई लुटेगा तो तुम बसोगे। कोई बस्ती उजड़ेगी तो तुम्हारी बस्ती आबाद होगी। यहां तो जीवन छीना-झपटी है। यहां तो हरेक, हरेक का शोषक है। जो जितना कुशल है, जो जितना कपटी है, जो जितना बेईमान है, वह उतना ज्यादा झपट्टा मार लेगा। लेकिन भीतर के जगत में और ही अर्थशास्त्र है। वहां तुम्हारी संपदा जितनी बढ़ती है, किसी की घटती नहीं, उलटे तुम्हारी संपदा के बढ़ने से औरों की संपदा बढ़ती है।

133. जीवन में जागरण

एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो सारी मनुष्यता जैसे एक सीढ़ी ऊपर उठ जाती है। पता भी नहीं चलता तुम्हें, लेकिन तुम्हारे भीतर क्रांति हो जाती है। एक व्यक्ति बुद्ध होता है तो उसकी रोशनी, उसकी जगमगाहट तुम्हारे अनजाने ही, तुम्हारे प्राणों को आंदोलित कर जाती है। उसकी सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भर जाती है। तुम पहचानो न पहचानो, तुम आभार मानो न मानो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। जब वसंत आता है तो हजारों फूल खिल जाते हैं। तुम चाहे देखो न देखो, लेकिन हवा में गंध होती है, तुम्हारे नासापुट गंध से भरते हैं। हवा में ताजगी होती है, पक्षियों के गीत होते हैं। तुम सुनो न सुनो, तुम बहरे रहो, रहो, मगर गीत तो तुम्हारे प्राणों में प्रवेश करते ही जाते हैं। चुपचाप! बिना किसी पगध्वनि के! एक व्यक्ति का जाग्रत हो जाना सारी मनुष्य-जाति के जीवन में जागरण की एक लहर पहुंचा देता है।

134. जीवन = परमात्मा

मैं संन्यासी कहता हूं उसे, जो जीवन को उसकी परिपूर्णता में जीए; जो जीवन को ही परमात्मा मान कर जीए; जिसके लिए जीवन और परमात्मा पर्यायवाची हैं; जिसके लिए जीवन परमात्मा की भेंट है; जो उसे अहोभाव से जीता है; और जो अपने जीवन को जागरूकता से जीता है; और जो अपने जीवन को अतीत के लिए समर्पित नहीं करता, न भविष्य के लिए समर्पित करता है--वर्तमान में, वर्तमान की सघनता में, त्वरा में, तीव्रता में जीता है। बस जो वर्तमान में जीने की कला है, उसका नाम ही संन्यास है। उससे ही महारास पैदा होता है। उससे ही आता है वसंत और हजारों फूल खिल जाते हैं! कमल पर कमल तुम्हारी चेतना में खिल जाते हैं! होश के कमल! जागृति के कमल! समाधि के कमल!

135. भागो मत, जागो

मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता हूं कि भाग जाओ। मैं कहता हूं, यहीं, जहां हो-दुकान में, बाजार में--यहीं मुक्त होना है! अगर मुक्ति है तो यहीं है, कहीं और नहीं। मुक्ति अगर है तो आंतरिक बोध में है, छोड़ने-छाड़ने में नहीं। मुक्ति अगर है तो भागने में नहीं, जानने में है। तो जागो, अपने चैतन्य को गतिमान करो, ऊर्ध्वगामी करो। अपने ध्यान को निखारो। बाहर की चीजों पर मत अटको-न भोग के लिए, न त्याग के लिए। न तो उनके लिए पागल हो जाओ कि नहीं मिलेंगी तो मर जाएंगे। और न पागल हो जाओ कि अगर मिल गईं तो मर जाएंगे। बाहर की चीजों का इतना तुम्हारे ऊपर वश हो तो तुम्हारी कोई हैसियत ही नहीं है।

136. मंहगा सौदा न करना

जो स्वयं को खोकर सब–कुछ भी पा ले, उसने बहुत मंहगा सौदा किया है। वह हीरे देकर कंकड़ बीन लाया है। उससे तो वही व्यक्ति समझदार है, जो कि सब–कुछ खोकर भी स्वयं को बचा लेता है।

137. शून्य में खिले पूर्ण का कमल

तुम शून्य तो होओ। और शीघ्र ही––फिर झरें नन्हीं फुहारें चेतना के निर्झरों से! तुम बिल्कुल ही शून्य हो जाओ, कुछ पकड़ो मत। एकदम सन्नाटा हो जाओ। और अमृत झरेगा। उसी शून्य से पूर्ण का आविर्भाव होता है। उसी शून्य में खिलता है पूर्ण का कमल।

138. पाने का मूल्य

एक बात स्मरण रखना कि स्वयं की सत्ता से ऊपर ओर कुछ नहीं है। जो उसे पा लेता है, वह सब पा लेता है। और, जो उसे खोता है, उसके कुछ–भी पा लेने का कोई मूल्य नहीं है।

139. जीवन का अभिनंदन

तुम्हारे महात्मा भी संसार को मानते तो सत्य ही हैं, मगर कहते रहते हैं– माया। क्योंकि सत्य है; तुम्हारे कहने से असत्य हो जाएगा? इस देश की बड़ी से बड़ी भूल हो गईः मायावाद। हमें मायावाद से छुटकारा पाना होगा और हमें जीवन के सत्य को स्वीकार करना होगा, अंगीकार करना होगा, स्वागत–अभिनंदन करना होगा। आत्मा सत्य है, देह भी सत्य है! अंतर का जगत सत्य है, बहिर्जगत भी सत्य है। दोनों परमात्मा के रूप हैं। यह संसार परमात्मा की काया और इसमें छिपी हुई जो चेतना है वह परमात्मा की आत्मा है। यह उसका नृत्य हो रहा है। वह नर्तक है।

139. ये चैतन्य के कमल...!

इस सदी में परमात्मा से आस्था उठ जाने का कारण यही है: लोग प्रार्थना की कला भूल गए हैं। उस कला का पहला सूत्र है: मांगना मत, देना। परमात्मा से क्या मांगना है? उसने इतना दिया है! जीवन दिया है, और क्या चाहिए? चैतन्य दिया है, और क्या चाहिए? प्रेम दिया है, प्रेम की क्षमता दी है, और क्या चाहिए? इतना सौंदर्य दिया है, इतना सुंदर विश्व दिया है!

प्रार्थना अगर मांग बनी तो उसका अर्थ हुआ: शिकायत; इतना काफी नहीं है, कुछ और चाहिए। प्रार्थना होनी चाहिए धन्यवाद, कि जो दिया है वह मेरी पात्रता से ज्यादा है। कोई मेरी पात्रता तो नहीं थी कि मुझे जीवन मिले। कोई मेरी पात्रता तो नहीं थी कि इतने फूल मेरे जीवन में झरें, इतने गीत मेरे जीवन में लगें! यह मेरी कमाई तो नहीं थी, कि चांद-तारों से भरा हुआ यह आकाश मुझे उपलब्ध हो! यह हृदय प्रेम-पगा! यह प्राणों का संगीत! यह ध्यान की अनाहत ध्वनि! ये चैतन्य के कमल, ये मेरे भीतर खिलें--ऐसी मेरी कोई कमाई तो न थी। न मालूम किन अनजान हाथों का प्रसाद है!

140. मृत्यु-भय

स्वयं के भीतर जो है, उसे जानने से ही जीवन मिलता है। जो उसे नहीं जानता, वह प्रतिक्षण मृत्यु से और मृत्यु के भय से घिरा रहता है।

141. आनंद : अनुत्तेजना

सुख तो एक उत्तेजना है, और दुख भी। प्रीतिकर उत्तेजना को सुख और अप्रीतिकर को हम दुख कहते हैं। आनंद दोनों से भिन्न है। वह उत्तेजना की नहीं, शांति की अवस्था है।

142. सच्ची संपदा

स्मरण रखना कि जो कुछ भी बाहर से मिलता है, वह छीन भी लिया जावेगा। उसे अपना समझना भूल है। स्वयं का तो वही है, जो कि स्वयं में ही उत्पन्न होता है। वही वास्तविक संपदा है।

143. मौत का अतिक्रमण

मृत्यु से छुटकारा तो संभव नहीं है, लेकिन मृत्यु का अतिक्रमण संभव है। मृत्यु तो घटेगी। बुद्ध को भी मरना होता है, महावीर को भी मरना होता है, राम को भी और कृष्ण को भी। मृत्यु से तो छुटकारा संभव नहीं है। लेकिन मरने की भी एक कला है, जैसे जीने की कला है। मरने की कला हैः शांत, मौन, ध्यान में मरना। जीने की भी वही कला हैः ध्यान से जीओ। जितने दिन शेष हैं, ध्यान में जीओ। शांत, मौन, जागे हुए! ताकि शांत, मौन, जागे हुए मर भी सको। जो शांत, मौन मरने में समर्थ हो जाता है, वह जानता हुआ मरता है कि मैं नहीं मर रहा हूं। वह जागा हुआ मरता है कि देह छूटी, मन छूटा; मगर मैं तो वही का वही हूं। चैतन्य तो वैसा का वैसा है––अछूता! चैतन्य की इस शाश्वतता को जिसने देख लिया, उसके जीवन में आनंद की बरखा हो जाती है। फूल ही फूल झर जाते हैं अमृत के! वैसे ही फूल तुम्हारे जीवन में भी झर सकते हैं।

मृत्यु के इस भय का उपयोग कर लो। इसे शत्रु मत मानना; यह मित्र है। मृत्यु भी मित्र है अगर समझ हो; और नासमझी हो तो जीवन भी शत्रु हो जाता है।

144. जीते–जी मरना सीखो

जीवन में ही मरना सीख लेने से बड़ी और कोई कला नहीं है। उस कला को ही मैं योग कहता हूं। जो ऐसे जीता है कि जैसे मृत है, वह जीवन में जो भी सारभूत है, उसे अवश्य ही जान लेता है।

145. स्वभाव का स्वीकार

धर्म स्वीकार है–स्वभाव का; और विद्रोह है–उस सबसे, जो स्वभाव पर जबरदस्ती आरोपित किया गया है।

धर्म है तथाता––अपनी निजता की; और विद्रोह है––उस सबसे, जो दूसरों ने तुम्हारे ऊपर थोप दिया है।

धर्म है तथाता––चैतन्य के संबंध में; और विद्रोह है––समाज से, परंपरा से, रूढ़ि से, संस्कारों से।

146. विश्वास = विवेक की हत्या

बच्चों को अगर तुम सच में प्रेम करते हो तो उनको इस योग्य बनाओ, उनको इतनी क्षमता दो सोच की, विचार की; विवेक दो, इतना बोध दो, इतना चैतन्य दो, इतनी जागरूकता दो कि वे अपने जीवन में मार्ग खोज सकें। खोज सकें––किस घाट से मुझे उतरना है। खोज सकें––किस नाव में मुझे यात्रा करनी है। उनको इतना सबल बनाओ कि अगर वे समझें कि नाव से जाना नहीं, तैरना है, तो तैर कर भी जा सकें।

लेकिन हम विश्वास देते हैं। विश्वास कचरा है। विश्वास का अर्थ होता हैः विवेक की हत्या, बोध का विनाश। बोध को अंकुरित नहीं होने देना चाहते। और छोटा बच्चा असहाय होता है, तुम पर निर्भर होता है। तुम जो मनवाओगे, मानेगा। तुम जो करवाओगे, वही करेगा। जानता है कि तुम्हारे बिना जी नहीं सकता। तुम इस मौके का दुरुपयोग कर रहे हो। तुम बच्चे के साथ ज्यादती कर रहे हो। तुम शोषण कर रहे हो उसकी असहाय अवस्था का।

147. चेतना की मालकियत

एक दिन मौत आती है और सब बनाए हुए रेत के घरों को गिरा देती है, सब कागज की नावें डुबा देती है। मगर तब तक बहुत देर हो गई होती है। फिर तुम लाख हाथ-पैर पटको, तो भी कुछ कर न सकोगे। इसलिए पहले ही चौंक जाना, पहले ही सम्हल जाना जरूरी है। उस सम्हल जाने का नाम ही संन्यास है।

संन्यास है- मन के ऊपरचेतना की मालकियत।

संन्यास है साक्षी-भाव।

संन्यास है इस बात की घोषणा कि अब मैं चेतना को मन से संचालित नहीं होने दूंगा; अब चेतना मन को संचालित करेगी; चेतना के हाथ में लगाम देता हूं मन की।

और मालकियत जब होगी तो तुम्हारे हाथ में होगा, जब चाहो मन का उपयोग करो और जब चाहो तब मन को बंद कर दो।

148. पूजा में हंसी के फूल

पूजा में अपने जीवन के फूल चढ़ाने हैं। अपने बोध के फूल, अपने प्रेम के फूल, अपने आनंद के फूल, अपने हंसी के फूल, अपने आंसुओं के फूल--इनको चढ़ाना है।

पर अभी बचो, अभी पूजा की बात मत छेड़ो जागेश्वर। अभी जागो। किसने तुम्हें यह प्यारा नाम दे दिया--जागेश्वर! जरा अपने नाम का ख्याल तो करो! कुछ अपने नाम की इज्जत भी रखो! अभी जागो। साक्षी बनो। चैतन्य को उभारो। ईश्वर का थोड़ा बोध होने दो। होता है बोध निश्चित। जो जाग गया, उसे बोध होता ही है। अपरिहार्यरूपेण होता है। और जब बोध होता है तो पूजा अपने आप पैदा होती है, करनी नहीं पड़ती। और जब पूजा स्वस्फूर्त होती है, उसका सौंदर्य अनूठा है।

189. विरह क्या है?

विरह का अर्थ हैः मैं पृथक हूं, अलग हूं, अस्तित्व से भिन्न हूं, अभिन्न नहीं, ऐसी प्रतीति। जैसे कोई पत्ता वृक्ष का समझ ले कि मैं वृक्ष से अलग हूं। होता नहीं समझने से, मानने से होता नहीं, रहता तो वृक्ष का ही हिस्सा है, लेकिन मान्यता हो जाए तो भ्रांति खड़ी हो जाती है। प्रभु से हम अलग नहीं हैं, सिर्फ अलग होने की भ्रांति है। भ्रांति ही तोड़नी है। प्रभु से जुड़ना थोड़े ही है! उससे तो जुड़े ही हैं। लाख उपाय करें तो भी टूट नहीं सकते। टूटना असंभव है क्योंकि टूटकर होना असंभव है। जो भी है, प्रभु में है। अस्तित्व अर्थात् परमात्मा। तुम हो, इतना काफी है तुम्हारा परमात्मा में होने के लिए। कौन ले रहा है तुम्हारे भीतर श्वास? कौन तुम्हारे प्राण में धड़क रहा है? कौन है तुम्हारे भीतर चैतन्य? वही है।

लेकिन, पत्ते ऐसी भूल नहीं करते। कर नहीं सकते। करने का उनका सामर्थ्य नहीं। मनुष्य ऐसी भूल करता है। करने का उसका सामर्थ्य है। यह मनुष्य की महिमा है और उसका दुर्भाग्य भी। महिमा, क्योंकि मनुष्य अकेला है जो स्व-चेतन हो सकता है। और दुर्भाग्य, क्योंकि स्व-चेतन होने की क्षमता का दुरुपयोग हो सकता है। और स्व-चेतन होने की क्षमता अहंकार बन सकती है। अहंकार बन जाए तो हम टूट गए परमात्मा से।

150. खोज की दीवानगी

जो खोजता ही चलता है, जिसकी खोज ऐसी दीवानी है कि पाकर ही रहूंगा, जो परवाना है, जो मरने और मिटने को भी तैयार है, वह जरूर ऐसी मंजिल तक पहुंचता है जहां सब पीछे छूट जाते हैं-शास्त्र, सिद्धांत, शब्द, संगी-साथी- सब। रहबर भी। व्यक्ति बिल्कुल अकेला, चैतन्य मात्र रह जाता है।

151. मौत का डर क्यों?

मौत से कोई नहीं डरता। तुम्हारी जिंदगी खाली है, इसलिए मौत का डर लगता है। भरे हुए आदमी को मौत का डर नहीं लगता। बुद्ध मृत्यु से नहीं डरते। जीसस मृत्यु से नहीं डरते। मुहम्मद मृत्यु से नहीं डरते। मृत्यु का सवाल ही नहीं है। जीवन इतना भरा-पूरा है, इतना अहोभाव से भरा है, इतनी धन्यता से, इतना भरपूर है कि अब मौत आए तो आ जाए! कल आती हो तो आज आ जाए! आज आती हो तो अभी आ जाए! इतनी परितुष्टि है कि जो पाने योग्य था, पा लिया गया। अब मौत क्या बिगाड़ेगी? जो जानने योग्य था, जान लिया गया। अब मौत क्या छीन लेगी?

और जानने योग्य क्या है? स्वयं की सत्ता जानने योग्य है। स्वयं की चैतन्य अवस्था पहचानने योग्य है। आत्मा का धन पाने योग्य है। क्योंकि उसी धन को पाकर परमात्मा मिलता है। जिसने अपने को पहचाना, उसने परमात्मा को पहचाना।

152. जीवन को जीओ उसकी अखंडता में

मृत्यु के साथ नाहक भय के संबंध न जोड़ो। जीवन से प्रेम के संबंध जोड़ो, मृत्यु के साथ भय के संबंध मत जोड़ो। जीवन को जीओ उसकी अखंडता में, उसकी समग्रता में। और उसी जीने में, उसी जीने के उल्लास में मृत्यु तिरोहित हो जाती है। शरीर तो मरेगा ही मरेगा, शरीर तो मरा ही हुआ है; जो मरा ही हुआ है, वह मरेगा। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, वह तो कभी जन्मा नहीं, इसलिए मरेगा भी नहीं। उससे पहचान करो। यह मत पूछो कि मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है? तुम्हारे भीतर जो असली तत्व है, वह तो मृत्यु के पार है ही, छुटकारे की जरूरत नहीं है। और जो मृत्यु के घेरे में है, तुम्हारी देह, उसका छुटकारा हो सकता नहीं।

153. स्वयं ही पुरस्कार

प्रेम और प्रार्थना का आनंद उनमें ही है– उनके बाहर नहीं। जो उनके द्वारा उनसे कुछ चाहता है, उसे उनके रहस्य का पता नहीं है। प्रेम में डूब जाना ही प्रेम का फल है। और, प्रार्थना की तन्मयता और आनंद ही उसका पुरस्कार है।

154. चैतन्य की अदृश्य जड़ें

परमात्मा, अदृश्य हमारी जड़ें हैं। ऐसे भी, वृक्षों की जड़ें भी कहां दिखाई पड़ती हैं? वे भी दबी हैं भूमि में, वे भी अदृश्य हैं इस अर्थ में। हमारी तो और भी अदृश्य हैं। क्योंकि हमारी जड़ें पौदगलिक नहीं हैं, पदार्थ की नहीं हैं, चैतन्य की हैं।

चेतना अदृश्य घटना है। हम चेतना से जुड़े हैं परमात्मा से। जितना हम परमात्मा को इनकार करते हैं, उतनी ही हमारी जड़ें टूटती चली जाती हैं। उतने ही हम रुग्ण और विक्षिप्त होने लगते हैं। जो नीत्शे के जीवन में घटा, वह अब पूरी दुनिया के जीवन में घट रहा है।

नीत्शे ने यह भी कहा था कि मैं भविष्यवाणी हूं। जो मुझे हो रहा है, वह सौ साल के भीतर प्रत्येक आदमी को होगा। और उसकी भविष्यवाणी सच साबित हो रही है। आज का आदमी जितना चिंतित, जितना उदास, जितना थका–हारा, जितना अर्थहीनता के बोझ से दबा है, उतना किसी सदी में कभी ऐसा न हुआ था। आदमी ने अपनी जड़ें अपने हाथ काट ली हैं। तुम सब कालिदास हो, जो उसी डाल पर बैठे हो जिसे काट रहे हो। हम परमात्मा से जुड़े हैं और अपने जोड़ को तोड़ रहे हैं, अपने सेतु तोड़ रहे हैं।

155. परमात्मा द्रष्टा है, दृश्य नहीं

जिनके जीवन में थोड़ी चेतना की प्रौढ़ता है, वे कुछ और बात कहते हैं। वे कहते हैं: परमात्मा दृश्य नहीं है। इसलिए कभी दिखाई नहीं पड़ा। किसी को दिखाई नहीं पड़ा। अगर कोई कहता हो कि मुझे परमात्मा दिखाई पड़ा है, तो समझना कि वह भ्रांति में है, उसने सपना देखा है। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा तो द्रष्टा है तुम्हारे भीतर, साक्षी है तुम्हारे भीतर। तुम्हारे "साक्षी चैतन्य" का ही नाम परमात्मा है। तुम्हारी आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था का नाम परमात्मा है। तुम उसे अनुभव कर सकोगे जब सब दृश्य छूट जाएंगे; जब केवल द्रष्टा ही रह जाएगा। कुछ दिखाई पड़ने को न होगा, सिर्फ देखने वाला बचेगा, तब देखने की ऊर्जा अपने पर ही लौट आती है। जैसे सांप कुंडली मार कर बैठ जाए, ऐसे द्रष्टा अपने पर ही कुंडली मार लेता है। उस कुंडली मार लेने का नाम ही ईश्वर का अनुभव है।

156. माला नहीं, मन को फेरो

उसकी तरफ चलना है तो हृदय में दीया जलाओ! ज्योति लेकर बढ़ो! चैतन्य का दीया, होश का दीया, बोध का दीया। अपने चारों तरफ प्रेम की रोशनी छिटकाओ! राम-राम जपने से क्या होगा, राम को जीओ। माला मत फेरो, मन को फेरो। मन अभी बाहर की तरफ दौड़ रहा है, इसे खींचो, इसे भीतर ले चलो। अभी यह विषयों में उलझा है, इसे विषयों से मुक्त करो, इसे शून्य से भरो। और तब तुम जानोगे-क्या है धर्म! और तब तुम पहचानोगे-क्या है परमात्मा! और वह पहचान तृप्ति से भर जाएगी। ऐसी तृप्ति- जो फिर कभी समाप्त नहीं होती।

157. हम उसी के गांव में हैं

जीवन का इकतारा टूटे जाकर तेरे गांव में,
प्राणों का यह दीप बुझे तेरे आंचल की छांव में।

यह सारा गांव उसी का है। ये सब आंचल उसी के हैं। ये आकाश में उठे हुए बादल उसी के आंचल हैं। और यह चांद-तारों की सजी बारात उसी की आंखें हैं। यह फूलों में जो मुस्कुराया है, कौन है? वृक्षों में जो हरा हो उठा है, वह कौन है? पशुओं में, पक्षियों में, मनुष्यों में, मुझ में, तुम में जो जाग्रत है, जो चैतन्य है, वह कौन है? हम उसी के गांव में हैं। हम उसी के मंदिर में विराजमान हैं। जहां तुम हो, वहीं काबा है और वहीं काशी है और वहीं कैलाश है, वहीं गिरनार है। कहीं और जाना नहीं, कुछ और पाना नहीं।

158. चित्त की सघनता है– प्रार्थना

तुम्हारे घर में आग लग जाए; तब तुम्हारे मन में फिजूल विचार नहीं आएंगे, जो रोज आते हैं। उस वक्त तुम सोचोगे कि कौन-सी टाकीज में कौन-सी फिल्म चल रही है? घर में आग लगी हो, उस वक्त तुम इस तरह की फिजूल बातें सोचोगे? सारी चेतना सिकुड़ आएगी।

जब तुम व्यस्त होते हो किसी काम में, तो चित्त सारी तरफ से खिंच आता है।

प्रार्थना ऐसी ही स्थिति की परम अवस्था है। वहां सारी चेतना सिकुड़ आती है भीतर। तो भीतर तो सघन होकर रोशनी हो जाती है और बाहर अस्तित्व खो जाता है। और ऐसी ही घड़ियों में प्रभु की पगध्वनि, उसके पैरों की पहली आहट, अतिथि के आगमन का पहला सुसमाचार पहुंचता है।

159. अमृत प्याला

पहली दफा शराब पीओगे, तो तिक्त लगेगी। अभ्यास करना होगा। प्रेम भी शराब है। शराबों की शराब है। उसके पार और शराब कहां? उससे गहरी और शराब कहां? पलटू कहते हैं–

कड़ुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।

लेकिन जिसने पी लिया, उसकी फिर मृत्यु नहीं होती। क्योंकि वह है तो अमृत। फिर वह न तो बूढ़ा होता और न मरता। शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा, मगर तुम्हारी चैतन्य की भीतर की अवस्था शाश्वत युवा है। उसका अनुभव शुरू हो जाता है। जिसने प्रेम पिया, उसने अपने भीतर शाश्वत को जाना।

देखा–देखी पिवै ज्वान सो भी मरै।।

लेकिन ध्यान रखना, दूसरे की देखा–देखी मत करना। कुछ लोग देखा–देखी कर रहे हैं! धर्म के जगत में देखा–देखी खूब चल रही है! कोई मंदिर में पूजा कर रहा है तो तुम भी पूजा करने लगे। सोचते हो, यह पूजा में कितना मस्त हो रहा है, मैं क्यों नहीं हो रहा? उसकी पूजा भीतर से उमगी है, तुम्हारी पूजा कागजी है।

160. वासना है भटकाव, चेतना है घर–वापसी

जब मैं कहता हूं शून्य होने की बात, तो उसका कुल इतना ही अर्थ है कि पूर्ण तुम हो। इधर तुम शून्य होने को राजी हुए तो तुम्हारी दौड़–धूप मिटी। दौड़–धूप मिटी तो सारी चेतना मुक्त हुई दौड़–धूप से, चेतना घर लौटी। बाहर नहीं जाओगे तो कहां जाओगे? घर आओगे! घर आने का कोई रास्ता थोड़े ही है––बस बाहर जाना छोड़ देना है कि घर आ गए। घर तो तुम हो ही, तुम्हारी वासना ही भटकती है दूर–दूर।

161. प्राणों का दीया जलाओ

ऐसी तुमने मैत्री जानी कि जरूरत पड़े तो जीवन दे दो? तो फिर तुमने मैत्री नहीं जानी। और ऐसा तुमने प्रेम किया है कि अपना सब गंवाने को राजी हो जाओ? नहीं, प्रेम तुम करते हो गंवाने के लिए नहीं, दूसरे से कुछ पाने के लिए। प्रेम सौदा है। तुमने कभी ऐसी भक्ति की है कि अपनी गर्दन उतार कर रख दो? अपने को नहीं चढ़ाते भक्त, पड़ोसियों के बगीचों से फूल तोड़कर चढ़ा देते हैं। अपने बगीचे से भी नहीं तोड़ते! वह भी पड़ोसियों के बगीचे से फूल तोड़ कर चढ़ा देते हैं! चैतन्य का फूल चढ़ाओ, अपनी आत्मा का फूल चढ़ाओ, तो उस प्यारे से मिलना हो। तुमने सस्ती तरकीबें निकाली हैं, तुम परमात्मा तक को धोखा देने की चेष्टा में संलग्न हो। दीया जलाया, आरती उतार ली। प्राणों में कब दीया जलाओगे? आरती वहां उतारनी है! धूप-दीप जला ली, सुगंध का धुआं उड़ा दिया। अपने को कब जलाओगे? तुम्हारे प्राणों से कब धूप उठेगी? कब तुम्हारे प्राण धुआं बन कर आकाश की तरफ उड़ेंगे! तब तुम छू पाओगे उसके चरण; उसके पहले नहीं।

162. चेतना की निस्तरंग झील

ध्यानी का अर्थ हैः मन भी ठहरे, तन भी ठहरे। बस ठहराव आ जाए। चेतना की यह झील बिल्कुल निस्तरंग हो जाए। उस निस्तरंग चित्त में परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जाना जाता है। परमात्मा वस्तु या ज्ञेय की तरह नहीं जाना जाता। परमात्मा तो ज्ञाता की तरह जाना जाता है, जानने वाले की तरह जाना जाता है। परमात्मा दृश्य नहीं बनता कभी, वह तो द्रष्टा है। वह तुम्हारे भीतर भी द्रष्टा होकर विराजमान है और तुम दृश्य की तरह उसकी खोज कर रहे हो, इसलिए बहुत दूर-दूर...। तुम्हारे कारण दूर है। तुम थोड़ा समझो, तुम थोड़ा गुनो तो उससे ज्यादा पास और कोई भी नहीं है।

163. प्रश्न–रहित रहस्य

यदि विराट हमारी क्षुद्र शर्तें मान ले, तो वह विराट न रह जाए। हमारी अपेक्षाएं पूरी नहीं की जा सकतीं। हमें अपेक्षाएं छोड़नी होंगी। और तब अचानक सारा रहस्य खुल जाता है। और जब मैं कहता हूं सारा रहस्य खुल जाता है, तो ऐसा मत समझ लेना कि तुम्हें सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। उत्तर तो एक भी प्रश्न का नहीं मिलता, लेकिन सारे प्रश्न गिर जाते हैं। जब मैं कहता हूं सब रहस्य खुल जाता है, तो मेरा अर्थ हैः सारे प्रश्न गिर जाते हैं। पूछने वाला ही घुल जाता है, मिल जाता है, डूब जाता है। पूछने वाला ही नहीं बचता। मन ही पिघल जाता है। जिसमें प्रश्न लगते थे, प्रश्न उगते थे, वह मूल स्रोत ही जड़ से कट जाता है। प्रश्न गिर जाते हैं, एक निष्प्रश्न मौन छा जाता है। उस निष्प्रश्न मौन में ही जाना जाता है क्या है। जहां निष्प्रश्न, निस्तरंग चैतन्य है, वहां जान लिया गया सब।

164. धन्य हैं वे जो निराश हैं

बुद्ध ने कहा है, बहुत हैरान करने वाला वचन, कि धन्य हैं वे जो निराश हैं। तुम सुनोगे तो कहोगे, यह क्या बात हुई! निराश और धन्य! धन्य हैं वे जो हताश हैं– यह क्या बात हुई? यह कैसी धन्यता हुई? लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जो हताश हो गया, जो निराश हो गया, जिसकी अब कोई आशा न रही, कोई पाने की संभावना जिसकी न रही, जिसने सारी तरह से देख लिया कि बाहर भ्रमहींभ्रम है, मृग–मरीचिका ही मृग–मरीचिका है, उसे अनिवार्यरूपेण भीतर मुड़ना होता है। मुड़ना होता है कहना ठीक नहीं, मुड़ जाता है। अनिवार्यरूपेण। चेतना जब बाहर नहीं जाती तो कहां जाएगी? अपने में ही बैठ जाती है। जैसे ही बहिर्यात्रा बंद हुई कि तुम अपने में ठहरे, थिर हुए। उसी स्थिरता में स्वाद है अमृत का।

165. पास से भी पास

परमात्मा प्रकट से भी प्रकट, अप्रकट से भी अप्रकट है। पास से भी पास, दूर से भी दूर है। आंख हो तो पास, आंख न हो तो दूर। और आंख हमारे पास नहीं। सूरज द्वार पर नाच रहा है, अपनी सतरंगी किरणों को लेकर, पर अंधे को पता कैसे चले? या जो आंख बंद किए बैठा है, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठा है, उसे अनुभव कैसे हो? सूरज की तरफ से कोई कमी नहीं, कोई कृपणता नहीं है। कृपणता है तो हमारी तरफ से। हम आंख खोलने में भी संकोच करते हैं। द्वार पर दस्तक दे परमात्मा, तो भी हम अनसुनी कर जाते हैं। सुन भी लेते हैं तो अनसुनी करते हैं।

और ऐसा नहीं है कि उसने द्वार पर दस्तक न दी हो। ऐसा कोई द्वार ही नहीं है जिस पर वह दस्तक न देता हो। और एक बार नहीं, अनेक बार देता है। अनेक बार नहीं, अनंत बार देता है। सुबह देता है, दोपहर देता है, सांझ देता है, रात देता है। हर भावदशा में तुम्हें झकझोरता है। कभी सूरज की किरणों में, कभी चांद की किरणों में, कभी हवा के झोंकों में, कभी फूलों की गंध में, कभी पक्षियों की चहचहाहट में--कितने रूपों में आता है! मगर हमारी कठिनाई यह है कि हम उसके इस अनंत रूप को समाने के लिए राजी नहीं। हमने तो उसकी छोटी-छोटी प्रतिमाएं बना ली हैं। हम तो चाहते हैं वह हमारी प्रतिमा के रूप में आए। हमने शर्तें बांध रखी हैं कि ऐसे ही आओगे तो स्वीकार होओगे। और हमारी शर्तें मानने को वह मजबूर नहीं। हमारी शर्तें वह मान भी नहीं सकता।

166. धोखा किसे?

एक सत्य सदा स्मरण रखनाः दूसरों को दिया गया धोखा अंत में स्वयं को ही दिया गया धोखा सिद्ध होता है। ...क्योंकि हम जो दूसरों के साथ करते हैं, अंततोगत्वा वह हम पर ही लौट आता है।

167. ज्ञान–रहित ज्ञान

जब मैं कहता हूं जान लिया गया सब, तो यह मत समझना कि तुम बड़े ज्ञानी हो जाओगे, कि तुम बड़े पंडित हो जाओगे। नहीं, जब तुम सब जानोगे तो तुम बिल्कुल निर्दोष हो जाओगे। पांडित्य का तो दूर–दूर तक पता न चलेगा। एक सरलता होगी। एक सहजस्फूर्त चैतन्य का आविर्भाव होगा। खुलेगा एक आकाश जिसका न ओर है, न छोर है। लेकिन, ज्ञाता तुम नहीं बन जाओगे। मुट्ठी में तुम्हारे ज्ञान नहीं आ जाएगा। तुम तो बचोगे ही नहीं। बचेगा एक माधुर्य, एक स्वाद अमृत का। तुम्हारे रोएं–रोएं में प्रतिध्वनित होगी एक मधुर ध्वनि, एक मधुर कलरव–अनाहत का, ओंकार का। लेकिन तुम ज्ञानी नहीं हो जाओगे। उत्तर ही पास न हों तो तुम ज्ञानी कैसे होओगे? जहां रहस्य का अनुभव होता है, वहां व्यक्ति निर्दोष हो जाता है। या व्यक्ति निर्दोष हो जाए, तो रहस्य का अनुभव हो जाता है। निर्दोषिता तुम्हारी तरफ से और परमात्मा की तरफ से रहस्य की वर्षा हो जाती है।

168. तुम, बस तुम हो जाओ

तुम पूछते रहोगे, पंडित बताते रहेंगे। न तो उस तक जाने का कोई मार्ग है––क्योंकि वह दूर ही नहीं है कि मार्ग हो। वह तो तुम्हारे प्राणों के प्राण में बैठा है। उस तक जाने की कोई विधि नहीं है; क्योंकि विधि तो उसे पाने की होती है जो पराया हो। वह तो हमारी आत्मा है। उसे पाने की क्या विधि? न कोई मंत्र है, न कोई विज्ञान है। शांत, मौन, सहज और नैसर्गिक हो जाओ, तुम उसे पाए ही हुए हो। शांत, मौन निसर्ग में तुम अचानक चकित हो जाओगे, हम जिसे खोजते थे, वह खोजने वाले में छिपा है। वह तुम्हारे भीतर छिपा हुआ द्रष्टा है। वह तुम्हारे भीतर बैठा हुआ साक्षी, चैतन्य है।

169. राह क्यों नहीं मिलती?

ध्यान रखना, दिन बहुत थोड़े हैं। समय बहुत कम है। राह खोजनी है कि निर्दोष हो सको। राह खोजनी है कि उसके रहस्य से जुड़ सको। शायद हम गलत दिशा में खोजते हैं। हम बाहर खोजते हैं, इसलिए राह नहीं मिल पाती।

जहां स्वयं में उतरना पड़े; राह वहीं है। अपने ही अंतस्तल की सीढ़ियों में उतरना है। अपनी ही चेतना के कुएं में उतरना है; राह वहीं है। स्वयं को जानकर ही उसे जाना जाता है। आत्मपरिचय ही उसका परिचय बन जाता है। और हम खोजते हैं वेद में, कुरान में, बाइबिल में, धम्मपद में, जेंदा अवेस्ता में! हम कहां-कहां नहीं खोजते! हम मुर्दा किताबों में खोजते हैं और वह हमारे भीतर जीवंत बैठा है, हमारे चैतन्य की तरह। वह खोजने वाले में खोजने वाले की तरह बैठा है। वह कोई दूर का लक्ष्य नहीं है कि तुम्हें तीर बनना है और उस लक्ष्य से जाकर जुड़ जाना है। वह तुम्हारे भीतर, तुम्हारे साथ, तुम्हारा अंतरतम है। तुम्हारा स्वभाव है। जब तक बाहर खोजोगे, नहीं पा सकोगे। जब भीतर झांकोगे, खोना भी चाहो तो नहीं खो सकोगे।

170. क्यों नहीं, पूछो- कैसे?

तुम यह मत पूछो कि क्या परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है? ज्यादा अच्छा हो कि पूछो कि मैं अपने अस्तित्व को कैसे जानूं? पूछो कि आत्मा को कैसे जानूं? क्योंकि जिसने आत्मा जानी, उसने परमात्मा जाना। जिसे अपने भीतर आत्मा का अनुभव हुआ, उसे तत्क्षण प्रगट हो गया कि सबके भीतर यही चैतन्य विराजमान है। अलग-अलग रूप, अलग-अलग ढंग, अलग-अलग विधा, मगर एक ही प्रगट हो रहा है। जिसने अपने भीतर पकड़ लिया उसे, उसने सबके भीतर पकड़ लिया। और अपने भीतर ही पहले पकड़ा जा सकता है।

171. चैतन्य का वसंत

देर न करना! वसंत के जाते देर नहीं लगती! अभी बुद्ध हैं, अभी बुद्ध नहीं हैं। बुद्ध तो एक वसंत हैं चैतन्य के। और, प्रकृति का वसंत तो हर वर्ष आ जाता है, लेकिन बुद्धों के वसंत आने में तो सदियां लग जाती हैं। सदियों-सदियों में कभी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। टालना मत! कहना मत कि कल! क्योंकि क्या पता, कब वसंत बीत जाए! कब हाथ में झरे पत्ते रह जाएं? उन्हीं झरे पत्तों को लोग शास्त्र कहते हैं। पहले तो पत्तों से ही शास्त्र बनते भी थे। पत्तों पर ही लिखे भी जाते थे। अब अगर पत्तों पर नहीं भी लिखे जाते तो भी फर्क नहीं है कुछ, ये पतझड़ के ही पत्ते हैं! जब वसंत था और पत्ते हरे थे और फूलों से लदे थे और वृक्ष ताजा था, जीवंत था, हरा था, बदलियों से बात करता था, चांद-तारों के साथ संबंध था, नाचता था, गाता था, गुनगुनाता था, तब तुम कहां थे? तुम आते ही हो तब, जब वृक्ष जा चुका, सूखे पत्ते पड़े रह गए! उनको तुम संजो लेते हो। उनसे तुम शास्त्र निर्मित कर लेते हो। फिर सदियों-सदियों तक पंडित उन्हीं पत्तों की पूजा करता रहता है। सड़े-गले पत्ते, सूखे-साखे पत्ते। माना कि कभी उन पर वसंत था, पर अब नहीं है। और माना कि कभी उनमें फूल खिले थे, मगर अब नहीं हैं। और माना कि कभी भौंरे उनके आसपास गुनगुनाए थे, मगर वह बात गई हो चुकी।

वसंत जब हो चैतन्य का कहीं, तो झुक जाना, टिक जाना। तो सब दांव पर लगा देना। फिर तर्कजाल खड़े मत करना। फिर व्यर्थ की बातों में मत उलझना। फिर व्यर्थ के बहाने न खोजना बचने के।

172. हरिनाम पर ध्यान धरो

आत्मा को जानते ही मृत्यु विदा हो जाती है, जैसे दीए के जलते ही अंधकार विलीन हो जाए। जैसे सुबह के होते ही रात समाप्त हो जाए।

इसलिए और चीजों से चित्त को हटाओ! व्यर्थ में अपने को मत भरमाओ! अब थोड़ा उसे देखो जो तुम हो, जो तुम्हारी निजता है। जो तुम्हारे भीतर झरना चैतन्य का बह रहा है, थोड़ी उससे पहचान करो! थोड़ा उसके साथ डूबो, एक होओ, एकरस बनो!

173. परमात्मा = अस्तित्व + चैतन्य

लेकिन परमात्मा शब्द बड़ा प्यारा है, उसमें प्रकृति भी आ जाती है, अस्तित्व भी आ जाता है और कुछ ज्यादा भी– जो शब्दों में नहीं समाता, वह भी आ जाता है। अस्तित्व में तो वही आता है जो शब्दों में समाता है। प्रकृति में वही आता है जिसकी विज्ञान परख कर लेता है, जांच लेता है, माप कर लेता है। लेकिन परमात्मा में कुछ ज्यादा।

अस्तित्व और प्रकृति छोटे शब्द हैं। परमात्मा का बहुत कुछ उनमें आ जाता है लेकिन बहुत कुछ शेष रह जाता है। गद्य हिस्सा तो आ जाता है, पद्य भाग छूट जाता है। वीणा तो आ जाती है लेकिन वीणा से उठने वाला संगीत छूट जाता है। ऊपर–ऊपर जो दिखाई पड़ता है, वह तो सम्मिलित हो जाता है, लेकिन भीतर–भीतर जो छिपा है, जोअंतर्धारा हैचैतन्य की–जो न प्रत्यक्ष है, न प्रत्यक्ष हो सकती है; जिसका होना ही परोक्ष है; वह छूट जाता है।

इसलिए परमात्मा शब्द का प्रयोग करता हूं।

परमात्मा का अर्थ हैः चैतन्य अस्तित्व। अस्तित्व+चैतन्य। बाहर–बाहर तो प्रकृति है, भीतर–भीतर जो छिपा है गहन में– वह परमात्मा।

174. तुम तुम ही हो जाओ

कोई दीवार नहीं है। दीवार हमारी बनाई हुई है। और पंडित–पुजारी उस दीवार को बढ़ाने में सहयोगी होते हैं। क्योंकि दीवाल जितनी बड़ी हो, जितना तुम अपने से टूट जाओ, उतना ही तुम उनके शिकंजे में फंस जाओगे। उतने हीं तुम उनके कब्जे में हो जाओगे। सदगुरु वह है जो दीवाल गिरा दे, जो तुमसे छीन ले ज्ञान, विधि–विधान; जो तुमसे छीन ले सब और तुम्हारे अहंकार के लिए कोई जगह न बचने दे; त्याग, तपश्चर्या, उपवास, ब्रह्मचर्य– जो सब छीन ले तुमसे और तुम्हें छोड़ दे; निपट तुम्हारे निसर्ग के अनुसार, फिर गुलाब गुलाब हो जाता है, चंपा चंपा हो जाती है, चमेली चमेली हो जाती है। अभी बड़ी हालत खराब है। चमेली चंपा होना चाह रही है, गुलाब कमल होना चाह रहा है––और नहीं हो पा रहा है तो बड़ी पीड़ा है, बड़ा विषाद है। तुम तुम हो और तुम केवल तुम ही हो सकते हो और तुम तुम ही हो जाओ तो परमात्मा उपलब्ध हुआ।

175. ध्यान और प्रेम हैं क्रांतिबीज

तुम कोरी किताब की तरह पैदा होते हो। धन–पद–प्रतिष्ठा, इसी को इकट्ठा करते रहे, तो फिर जिंदगी बस ऐसी ही होगी जैसी तुम पाते हो––भीड़ की जिंदगी! लेकिन चाहो तो यह अनगढ़ पत्थर गढ़ा जा सकता है। यह कोरी किताब गीता बन सकती, कुरान बन सकती है। आखिर मुहम्मद ने इसी कोरी किताब को कुरान बनाया। आखिर कृष्ण ने इसी कोरी किताब को गीता बनाया। तुम क्यों गीता और कुरान पढ़ते हो? तुम्हारी क्षमता भी उतनी ही है। तुम क्यों नहीं गीता और कुरान बनते? तुम क्यों नहीं अपने भीतर उमगाते कुछ गुलाब के फूल; क्यों नहीं चेतना की झील में कमल को तैराते? यह हो सकता है। थोड़ा ध्यान जगे, थोड़ा प्रेम जगे, बस क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। फिर तुम भेड़ न रह जाओगे।

176. समाधि है समाधान

सारे प्रश्न सुंदर हैं। क्योंकि प्रश्न न होते तो जिज्ञासा न होगी। जिज्ञासा न होती तो तुम खोज पर न निकलते। लेकिन तुम करते हो बेईमानी। प्रश्न तो सच्चे हैं, उत्तर उधार ले लेते हो। इससे पांडित्य पैदा भले हो जाए, मगर जीवन में समाधान नहीं हो सकता। समाधान तो केवल समाधि से होता है। और समाधि का अर्थ हैः स्वयं के भीतर एक ऐसे चैतन्य की दशा, जहां न कोई विचार है, न कोई भाव है, न कोई स्मृति, न कल्पना--जहां चित्त की सारी लहरें शांत हो गईं; जहां चित्त के सारे व्यापार निरोध को उपलब्ध हो गए। बस वही योग की दशा है-- जहां चित्त की झील बिल्कुलनिस्तरंग हो गई। तरंग-शून्य झील में ही चांद का प्रतिबिंब बन पाता है। ऐसे ही, तुम्हारी चेतना की शांत, शून्य अवस्था में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। सत्य का साक्षात्कार ज्ञान है।

177. शून्य में ही पूर्ण

ध्यान के मार्ग पर मुझे भूलकर तुम मेरी बात को पूरा कर रहे हो, मेरे उपदेश को पूरा कर रहे हो। यही तो मैं कह रहा हूंकि तुम्हारे मार्ग में अगर मैं आ जाऊं तो तलवार उठाकर दो टुकड़े कर देना। वहां तो कोई नहीं बचना चाहिए! वहां तो बस केवल शून्य चैतन्य बचे--निर्विकार, निर्विकल्प, निर्विचार, निर्बीज। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होगा; मगर विचार नहीं, अनुभव की तरह; विचार की तरह नहीं, भाव की तरह। और वही तुम्हारी मेरे प्रति कृतज्ञता होगी। जिस दिन तुम उस ध्यान की समाधि को पा लोगे, वही तुम्हारा धन्यवाद होगा। मैं याद आऊं न आऊं, यह सवाल नहीं है; तुमने ध्यान पा लिया, अब और धन्यवाद क्या देना है? धन्यवाद हो गया!

178. महात्मा की छोड़ो, परमात्मा की सुनो

उदास हो तो अकारण नहीं हो सकते। तुम्हारे जीवन–दर्शन में कहीं भूल होगी। तुम्हारा जीवन–दर्शन उदासी का होगा। तुम्हें चाहे सचेतन रूप से पता हो या न हो, मगर जीवन को जीने की तुम्हारी शैली स्वस्थ नहीं होगी, अस्वस्थ होगी। तुम जीवन को ऐसे ढो रहे होओगे जैसे कोई बोझ ढोता है।

परमात्मा की सुनो, महात्माओं से मुक्त होओ। और परमात्मा की सुननी हो तो बीच से सारे महात्माओं को हटा दो। तुम्हारे भीतर ही निश्चल चेतना में उसका स्वर गूंजेगा। वहीं ध्यान जमाओ। शांत होकर वहीं बैठो। वहीं से आने दो ओंकार। वहीं से आने दो आवाज, वहीं से आने दो उपदेश, और उसी की मान कर चलो। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी जिंदगी में प्रसन्नता ही प्रसन्नता फैल जाएगी। इस कोने से लेकर उस कोने तक दीपावली ही दीपावली हो जाएगी।

179. हीरे भी हैं, खोजो

मनुष्य भी कैसा अदभुत है, उसके भीतर कूड़े–करकट की गंदगी भी है और स्वर्ण की अमूल्य निधि भी। और हम किसे उपलब्ध हो जाते हैं, यह बिल्कुल ही हमारे हाथ में है।

180. चिर जीवन का रहस्य

मैं रोज ही मर जाता हूं––वस्तुतः प्रतिक्षण ही मर जाता हूं, और इसे मैंने जीवन का––चिर जीवन का रहस्य जाना है। जो अतीत को ढोता है, वह मृत को ढोने के कारण मृत होता है।

181. निज घर की तलाश

प्रभु की खोज क्या है? अपने खोए घर की खोज। संसार में मनुष्य बेघर है और अजनबी है।

182. अहंकार जाते ही आता है ओंकार

अनाहत नाद को सुननेवाले कहते हैं कि धारा को उल्टा करके राधा शब्द बनाया है। जब तुम्हारी चेतना की धारा बाहर की तरफ न बह कर भीतर की तरफ बहती है, जब तुम गंगा-सागर की तरफ न जाकर गंगोत्री की तरफ चल पड़ते हो, जब तुम अपने में ही डुबकी मारने लगते हो, तब तुम्हारे भीतर राधा का जन्म होता है। धारा, राधा बन जाती है। और जैसे ही तुम राधा बने कि कृष्ण से मिलन है; कि सुनी उसकी बांसुरी; कि सुनाई पड़ी उसकी तान; कि दिखाई पड़ा उसका नृत्य। जिन्हें भी खोजना है अनाहत नाद को, उन्हें राधा बनना होगा।

राधा कोई ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं है। राधा प्रत्येक भक्त के भीतर घटने वाली घटना का नाम है। राधा की अवस्था भक्त की चरम अवस्था है। बस, कृष्ण से मिलने के क्षणभर पूर्व राधा का जन्म होता है--बस क्षणभर पूर्व! क्षणभर राधा नाचती है कृष्ण के आस-पास, और पास, और पास, और पास और फिर... कृष्ण में लीन हो जाती है। जिस दिन तुम अपनी ही चेतना में, अपने ही मूलस्रोत में लीन हो जाते हो, उस दिन प्रलय घट गई, अहंकार गया। और जहां अहंकार नहीं है, वहीं वह परम संगीत है। तुम्हारा अहंकार व्याघात है, व्यवधान है। तुम्हारे अहंकार के कारण छंद बंध नहीं पा रहा है, टूट-टूट जाता है। गीत जम नहीं पाता, उखड़-उखड़ जाता है। राग बैठ नहीं पाता, बांसुरी बज नहीं पाती। तुम्हारा अहंकार बांसुरी में भरा है, बांसुरी बजे भी तो कैसे बजे? अहंकार से खाली हो बांसुरी, बस पोली पोंगरी रह जाए। कबीर ने कहा कि मैं तो बांस की पोली पोंगरी हूं। और जब से बांस की पोली पोंगरी हो गया हूं तब से अहर्निश, दिन-रात उसका संगीत मुझसे बह रहा है।

183. परमात्मा स्वाभाविकता में

मेरी शिक्षा है: निसर्ग। जीओ। शरीर की एक प्रकृति है, उससे अन्यथा मत जाओ। जाने की जरूरत नहीं। चैतन्य की प्रकृति है--इसी प्रकृति का और उच्चतर शिखर। शरीर अगर बुनियाद है, तो आत्मा उसी मंदिर का स्वर्ण-शिखर। दोनों एक ही प्रकृति के दो पहलू हैं। इसी प्रकृति का नाम परमात्मा है। परमात्मा कहीं और नहीं। प्रकृति को समर्पण करो। लड़ो मत, झगड़ो मत, सजाओ-संवारो मत, अहंकार के आयोजन न करो। न सिद्धपुरुष होना है, न संत, न महात्मा; सरल होना है, सहज होना है, नैसर्गिक होना है, स्वस्फूर्त होना है। यह अगर परमात्मा पर छोड़ सको, तो हो जाए।

184. परम पद की प्राप्ति

बहुत अकड़ कर देख लिया, कुछ पाया नहीं-सिवाए कष्ट के। इसलिए अब आंख नीची कर लो, अहंकार को हटा दो। अब चैतन्य को जगाओ। अहंकार को गिराओ और चैतन्य को जगाओ। अगर प्रभु के नाम का स्मरण लगने लगे तो एक तरफ अहंकार घटेगा और दूसरी तरफ चैतन्य जगेगा। जल्दी ही परम पद मिल जाएगा। परम पद का अर्थ होता है, जिसे पाने के बाद फिर और कुछ पाने को न रह जाए; जिसे पाते ही सब पा लिया। जिसे पाया तो पता चला कि कभी कुछ खोया ही नहीं था, उसे कहते हैं परम पद।

185. अध्यात्म का उद्देश्य

धर्म का लक्ष्य क्या है? पुरुष में सोए पुरुषोत्तम को जाग्रत करना। बस यही और यही धर्म का लक्ष्य है।

186. संसार : एक संभावना

मैं इस संसार की निंदा नहीं करता क्योंकि इसी संसार में परमात्मा जाना गया है। इसी संसार में सिद्धार्थ बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, कैसे निंदा करें इस संसार की? इसी संसार में दूलनदास ने उस परम–प्यारे को जाना, कैसे निंदा करें इस संसार की? इसी संसार में मोक्ष को अनुभव करने वाले लोग हुए। इसी अंधकार में सूर्यों के सूर्य लोगों के भीतर उगे, कैसे निंदा करें इस संसार की? यह संसार अवसर है; मगर ये दो संभावनाएं हैं। अगर तुम वैज्ञानिक से पूछो तो वह कहता है, चेतना कुछ भी नहीं है, बस मिट्टी की एक सह–उत्पत्ति, बाइप्रोडक्ट। और अगर तुम रहस्यवादी से पूछो तो वह कहेगा मिट्टी कुछ भी नहीं है, बस चेतना का एक प्रच्छन्न रूप। और दोनों में बड़ा फर्क हो गया। बड़ा फर्क हो गया! वही शब्द दोनों ने उपयोग किए, जरा इधर–उधर रखे, मगर बड़ा फर्क हो गया।

187. चैतन्य की गहराई में मुक्ति

सोचते हो, विचारते हो, पर सब सतह पर है, लहरों–लहरों में है। सागर की गहराई में तुम्हारा उतरना नहीं हुआ। वह जागने से ही संभव होता है, क्योंकि तुम चैतन्य हो। जितने जागोगे, जितने चेतन बनोगे, उतने ही भीतर जाओगे। चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। चैतन्य तुम्हारी गहराई, तुम्हारी ऊंचाई है। जिस तुम्हारी चेतना उतनी ही गहरी हो जाएगी जितनी तुम्हारी वासना, उसी क्षण मुक्ति हो जाएगी। तुम्हारे भीतर, आग में हाथ डालने की वासना जितनी गहरी है, जिस क्षण उतनी ही गहराई से यह सत्य तुम्हारे भीतर उतर आएगा कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, उसी दिन वासना कट जाएगी।

वृक्ष की शाखाओं को मत काटते रहो। उससे कुछ भी न होगा। जड़ें काटनी होंगी। जमीन में गहरे उतरना होगा। अपनी ही चेतना के अंधकार में दीये ले जाने होंगे।

188. संदेह नहीं, श्रद्धा है मार्ग

अंधकार हमारे संदेहों के कारण है। हमारे संदेह ही जम–जमकर गहन अंधकार हो गए हैं। हमारा संदेह ही हमारी अमावस्स बन गई है। और हमारी श्रद्धा के ही छोटे–छोटे दीए जलने लगें तो दीवाली हो जाए।

मगर ऐसा लगता है कि संदेह समझदारी है और श्रद्धा भोलापन है। संदेह लगता है बुद्धिमानी है और श्रद्धा अपने हाथ लुटने की तैयारी है। लगता ऐसा है, हालत बिल्कुल उल्टी है। यहां संदेह के हाथों लोग लुटे हैं और श्रद्धा के हाथों पहुंचे हैं। अब तक कोई भी अगर पहुंचा है तो श्रद्धा से पहुंचा है और संदेह से लुटा है।

189. गुरू है दीया

तुम्हारे भीतर चेतना का दीया जलना चाहिए, ध्यान का दीया जलना चाहिए। कौन जलाएगा? कौन विधि देगा? जले हुए दीप के पास जाओ तो तुम्हारा बुझा दीया भी जल सकता है। बस, पास जाते–जाते एक ऐसी घड़ी आ जाती है, एक ऐसी नैकट्य, सामीप्य की घड़ी, जब जलते दीए से बुझे दीए में छलांग लग जाती है ज्योति की। ऐसे ही, गुरु से शिष्य तक पहुंचती है रोशनी। ऐसे ही पहुंचती है। एक जीवित स्रोत से दूसरे जीवित स्रोत तक।

190. परमात्मा– न स्त्री, न पुरुष

जब काम गिर जाता है, शरीर गिर जाता है। मिट्टी से उठा, मिट्टी में वापस लौट जाएगा। और जैसे ही शरीर गिरा, वैसे ही शरीर के भीतर जो छिपा है, उसकी पहली झलक मिलनी शुरू हो जाती है। तब न तो तुम स्त्री को पाते हो, न पुरुष को। तब तुम सब जगह परमात्मा को पाते हो।

191. बादल नहीं, आकाश बनो

और फिर से तुम्हें दोहरा दूं, परमात्मा आता–जाता नहीं। आने–जाने की क्रिया संसार है। सदा होने की स्थिति परमात्मा है। जो आता है जाता है, उसी को तो हम मन कहते हैं। जो न आता न जाता, जो सदा है, वहीं तो चैतन्य है। बादल आते हैं, घिरते हैं, घुमड़ते हैं, नाचते हैं, बिजलियां चमकती हैं, फिर विदा हो जाते हैं! अब आषाढ़ आता है जल्दी; घिरेंगे बादल, घुमड़ेंगे, घड़ी भर को बड़ा रौरव मचायेंगे, बड़ा शोरगुल करेंगे––फिर जा चुके होंगे। जो बचा रहता है वहीं आकाश है। कितनी बार बादल घिरे और कितनी बार गये! आये और गये––वही संसार है। जो बचा रहा है पीछे, अछूता, अस्पर्शित, पोखर के कमल के पत्तों जैसा, जिस पर कोई बादल की छाया भी न छूटी और जिसे बादल मलिन भी न कर पाये, जिस पर बादलों की स्मृति भी नहीं है...!

आज आकाश को देखो, तो क्या तुम सोचोगे इस पर अरबों–खरबों वर्षों से बादल घिरते रहे हैं? निष्कलुष! निर्मल! कुंआरा! इसका कुंआरापन कभी भी खंडित नहीं हुआ। बादल आये और गये, इसके पास उनकी कोई स्मृति भी नहीं है।

192. मिटने वाला ही होशपूर्ण

खोओ अपने को! जब मैं कहता हूं, जलोगे, उसका इतना ही अर्थ है कि मिटोगे, डूबोगे। धीरे–धीरे तुम पाओगे, पुराने से संबंध टूट गया और एक नई ही चेतना का जन्म हुआ है। इस चेतना में मस्ती भी होगी, होश भी होगा। इस चेतना में ऐसी मस्ती होगी कि जिसमें होश है। इस चेतना में बेहोशी भी होगी; जैसा महावीर कहते हैं– निवृत्ति संसार से, प्रवृत्ति स्वयं से। इस बेहोशी में संसार के प्रति बेहोशी होगी, परमात्मा के प्रति होश होगा। 'पर' के प्रति बेहोशी होगी, 'स्व' के प्रति होश होगा। बाहर से तो तुम देखोगे, लुट गए; और भीतर से अनंत धन तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा, खजाने उपलब्ध हो जाएंगे।

193. पूर्णता से जियो

जीवन कोई ऐसी समस्या नहीं है, जिसका कि उसके बाहर कोई हल खोजना है। जीवन का हल तो पूर्णता से जीने में ही मिल जाता है।

194. वस्तु नहीं, साक्षी चैतन्य है आत्मा

जीवन को तथ्य में देखो। लेकिन उसे देखने के लिए तुम्हें सत्यमय होना पड़ेगा। जो सत्य है, वही सत्य को देखेगा। और तब तुम्हें संज्ञाएं न दिखायी पड़ेंगी, क्रियाएं दिखायी पड़ेंगी।

आत्मा कोई वस्तु थोड़े ही है कि तुम उसे मुट्ठी में बांध ले सकते हो--आत्मा तो तुम्हारे भीतर चैतन्य की सतत प्रक्रिया है। वह जो चैतन्य का आविर्भाव हो रहा है पल-पल, वह जो साक्षी जन्म रहा है शून्य से निरंतर--वही है आत्मा।

195. मृगतृष्णा ही बाधा

चाहने को कुछ है ही नहीं, मिला हीं हुआ है। इसीलिए तो कितना ही चाहो, मुश्किल में पड़ोगे। जो मिला ही हुआ है, उसे तुम खोज-खोजकर थोड़े ही पा सकोगे! खोज छोड़ो, ताकि चैतन्य घर पर लौट आये! खोज छोड़ो! क्योंकि खोज के कारण ही तुम अपने बाहर गए हो और उसे नहीं देख पा रहे हो जो तुम हो। रुको! परमात्मा को खोजना थोड़े ही है! सब खोज छोड़ देनेवाला व्यक्ति अचानक पाता है, परमात्मा है। तुम्हारी हालत ऐसी है कि हीरा सामने पड़ा है, लेकिन तुम कहीं दूर आंखें लगाए बैठे हो, चांद-तारों पर, कहीं दूर तुम्हारा सपना तुम्हें भटका रहा है।

196. प्रभु को पाने की शर्त

वस्त्र का अर्थ होता है; जिसमें तुम अपने को छिपा लो, ढांक लो। निर्वस्त्र होने का अर्थ है: छिपाने को कुछ भी न रहा, ढांकने को कुछ भी न रहा; हमने खोला अपना हृदय, सारे शब्द, सारे सिद्धांत हटा डाले। तुम जब कहते हो, मैं हिंदू हूं, तो तुम मन पर कुछ वस्त्र पहने हुए हो। तुम्हारा मन नग्न नहीं। तुम्हारी चेतना का कुछ आवरण है। जब तुम कहते हो, मैं जैन हूं, तब तुम सत्य के लिए खुले नहीं। तुम कहते हो, सत्य के प्रति मेरी कुछ धारणा है; जब सत्य उस धारणा को पूरा करेगा तो ही मैं मानूंगा कि सत्य है: तुम भटकोगे फिर। एक सांझ नहीं, हजारों सांझ होगी रटते-रटते, पहुंचना न होगा। खोने की तैयारी करो! मिटने की तैयारी करो! एक-एक इंच अपने को गलाओ। खोजनेवाला खो जाये, यही शर्त है उसे पाने की।

197. चैतन्य और अंतरात्मा

अध्यात्म यानी जागरण की प्रक्रिया; आत्मवान होने का शास्त्र। जैसे कछुआ सिकोड़ लेता है अपनी इंद्रियों को; जहां-जहां पाता है भय है, जहां-जहां पाता है चिंता है, वहीं भीतर सिकुड़ जाता है, अपनी गहरी सुरक्षा में डूब जाता है--ऐसे ही जहां-जहां तुम्हें लगे भय है, दुख है, पीड़ा है, असंतोष है, अभाव है, चिंता है, संताप है, वहां-वहां से अपने चैतन्य को हटा लेना। और अंतरात्मा की गहनता में वह सब है जो तुम पाना चाहते हो।

198. क्या बंधन, क्या मुक्ति?

सबसे बड़ी मुक्ति है स्वयं को स्वयं मुक्त करना। साधारणतः हम भूले ही रहते हैं कि स्वयं पर हम स्वयं ही सबसे बड़ा बोझ और बंधन हैं।

199. सब में एक ही चेतना

महावीर कहते हैं– 'जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है। जिसे तू मारने चला है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है। जिसे तूने गुलाम बना लिया है वह भी तू है।' यह एक ही आत्मा का विस्तार है। ठीक तेरे जैसा ही चैतन्य दूसरे में भी है।

हजार मिट्टी के दीये हों, ज्योति एक है। ज्योति का स्वभाव एक है। मिट्टी के दीयों में बड़ा फर्क हो सकता है––एक आकार, दूसरा आकार, हजार आकार हो सकते हैं; एक रंग, दूसरा रंग, हजार रंग हो सकते हैं। छोटे दीये, बड़े दीये, लेकिन सबके भीतर जो ज्योति जलती है वह एक है।

200. चेतना का विस्तार

एक युवक निकोदेमस, जीसस से पूछता है, कि मैं जल्दी में हूं, मुझे कुछ छोटा–सा सूत्र दे दें जो मेरा जीवन बदल दे। तो जीसस ने कहा, दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम चाहते हो, दूसरा तुम्हारे साथ न करे। उन्होंने कहा, इतना काफी है। इतने से सारा धर्म निकल आता है। दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम नहीं चाहते कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बस काफी है।

यह एक वचन ही बाइबिल की पूरी कथा है, पूरा सार है। महावीर का भी पूरा सार यही है। वे समझा रहे हैं कि तुम्हें यह बात ख्याल में आ जाये कि दूसरा 'दूसरा' नहीं है––तुम्हारे जैसा ही चैतन्य, तुम्हारी जैसी ही आत्मा, ठीक तुम्हारे ही जैसे सुख और दुख का आकांक्षी, ठीक तुम जैसा ही मोक्ष का खोजी, स्वतंत्रता का दीवाना है।

201. जागरण का भावार्थ

जागरण का अर्थ तुम्हारा जागरण नहीं है। तुम्हारा जागरण तो नींद का ही एक ढंग है। महावीर कहते हैं जागरण चित्त की उस दशा को, जब चैतन्य तो हो लेकिन विचार की कोई तरंग में छिपा न हो; कोई आवरण न रह जाये विचार का; शुद्ध चैतन्य हो; बस जागरण हो। तुम देख रहे हो और तुम्हारी आंख में एक भी बादल नहीं तैरता--किसी कामना का, किसी आकांक्षा का। तुम कुछ चाहते नहीं, तुम्हारा कोई असंतोष नहीं है। तुम जैसे हो, उससे तुम परम राजी हो। एक क्षण को भी तुम्हारा यह राजीपन, तुम्हारा यह स्वीकार जग जाये और तुम जगत को खुली आंख से देख लो--आंख जिस पर सपनों की पर्त न हो; आंख जिस पर सपनों की धूल न हो; ऐसे चैतन्य से दर्पण स्वच्छ हो और जो सत्य है वह झलक जाये--तो तुम्हारी जिंदगी में पहली दफा, वह यात्रा शुरू होगी जो जिनत्व की यात्रा है। तब तुम जीतने की तरफ चलने लगे। सपने में तो हार ही हार है।

202. क्षुद्र से बचना है– ध्यान

हम क्षुद्र को इकट्ठा करने में समय को गंवा सकते हैं। क्षुद्र सामने है और जो विराट है, वह छिपा है। इस क्षुद्र को इकट्ठा कर-करके भी तो कुछ पाया नहीं जाता। इसलिए महावीर कहते हैं, इसे दांव पर लगा दो। यह कचरा ही है; इसको दांव पर लगाने में कुछ खो नहीं रहे हो। और जो समय बच जायेगा, जो शुद्ध समय बच जायेगा, जिसको तुमने संसार में नहीं गंवाया, वही शुद्ध समय ध्यान बनता है।

संसार में न गंवाया गया समय ध्यान है। संसार की व्यस्तताओं में कलुषित न किया गया समय ध्यान है।

203. आविष्कार ही विकास

मनुष्य को विकास करके ईश्वर नहीं होना है। वह यदि स्वयं को पूरी तरह उघाड़ ले तो अभी और यहीं ईश्वर है। मेरी दृष्टि में स्वयं का संपूर्ण आविष्कार ही एकमात्र विकास है।

204. चैतन्य की अकम्पता है स्वास्थ्य

हमारे पास जो शब्द है 'स्वास्थ्य', वह यही अर्थ रखता हैः 'अप्पा अप्पम्मि रओ!' स्वास्थ्य का अर्थ हैः स्वयं में स्थित हो जाना। जब तुम बीमार होते हो तो तुम स्वयं में डांवांडोल हो जाते हो। सिर में दर्द है तो चेतना सिर के कारण डांवांडोल हो जाती है। पैर में कांटा लगा है तो कांटे के कारण चेतना डांवांडोल हो जाती है। जब तुम बिल्कुल डांवांडोल नहीं होते—जब शरीर को तुम बिल्कुल भूले रहते हो, ऐसा जैसा विदेह, है ही नहीं––तब तुम 'स्वस्थ।' यही तो आत्म-स्थिति की दशा है; जब तुम इतने अपने में लीन हो कि कोई गाली दे तो तुम बाहर नहीं आते। तुम वहीं अपने भीतर से सुन लेते हो, कोई परिणाम नहीं होता। तुम्हारी दशा में कोई भेद नहीं पड़ता। तुम वही रहते हो जैसा गाली देने के पहले थे; वैसे ही गाली देने के बाद रहते हो। गाली दी या न दी, बराबर। तुम पर कोई रेखा नहीं खिंचती, कोई खरोंच नहीं लगती। किसी ने सम्मान किया, तुम फूले नहीं जाते। तुम्हारे अहंकार का गुब्बारा बड़ा नहीं होने लगता। तुम वैसे ही रहते हो जैसे थे, कोई अंतर नहीं पड़ता।

205. ज्ञान में अनन्यता

समाधि में क्या जाना जाता है, कुछ भी नहीं। जहां तक जानने को कुछ भी शेष है, वहां तक समाधि नहीं है। समाधि सत्ता के साथ एकता है––जानने जितनी दूरी भी वहां नहीं है!

206. प्रेम अनुभव है, कृत्य नहीं

मां बच्चे को अगर प्रेम करती है तो करे। अगर उसके भीतर प्रेम का आविर्भाव हुआ है तो उलींचे, लुटाए, बरसाए। इस वर्षा में ही बच्चे की वीणा भी बजेगी--बजनी ही चाहिए। इस प्रेम के परिवेश में बच्चे का सोया हुआ प्राण जाग्रत होगा। बच्चे के बीज--प्रेम के--अंकुरित होंगे। यह प्रेम सब तरफ से बरसता हुआ उसके भीतर भी प्रेम की हुंकार को उठाएगा। यह प्रेम का आह्वान उसके भीतर भी चैतन्य को जगाएगा। वह भी प्रेम से भरेगा, लेकिन तब प्रेम का सहज अनुभव होगा। एक दिन अचानक पायेगा वह मां को प्रेम करता है। करता है--भाषा की बात; पायेगा कि मां से प्रेम है। और तब उसके जीवन में एक बात निश्चित हो जायेगी कि भूलकर भी प्रेम को कृत्य न बनाएगा।

207. भीतर की संपदा

इस जिंदगी में इन तीनों लोकों में जो भी मिल जाता है, वह बाहर-बाहर है। वह हमारा कभी नहीं हो पाता। जो बाहर है वह बाहर ही रह जाता है; उसे तुम भीतर ले जाओगे कैसे? तुम संपत्ति का ढेर लगा लोगे, लेकिन ढेर बाहर लगेगा, भीतर कैसे लगाओगे? भीतर ज्यादा से ज्यादा हिसाब रख सकते हो, संपत्ति के आंकड़े रख सकते हो; वह भी बहुत भीतर नहीं, वह भी मन में होंगे; वह भी चैतन्य में न पहुंच पाएंगे। चैतन्य तक तो आंकड़े भी नहीं पहुंचेंगे, संपत्ति तो बाहर रहेगी, गणित मन तक पहुंच जायेगा। संपत्ति मन तक भी नहीं पहुंचेगी, गणित भी न पहुंच पायेगा चैतन्य तक। तुम्हारी चेतना तो पार ही रहेगी। तो जब तक भीतर की कोई संपदा न मिल जाये तब तक कोई संपदा काम की नहीं है।

208. शून्य होने में है असीम का सुख

क्या है तुम्हारे पास अपना? सांस उसकी! बहता हुआ तुम्हारे शरीर में जल उसका। देह में मिट्टी के कण उसके! देह में समाया आकाश उसका! देह में जीवन की धारा अग्नि उसकी! और चैतन्य, वह उसी का अंश! जैसे तुम्हारे आंगन में आकाश समाया है--बाहर फैले आकाश का ही एक हिस्सा--ऐसे ही तुममें चैतन्य समाया है। विराट चैतन्य का एक छोटा-सा कोना, एक छोटा आंगन! सब उसका है।

209. शून्य हो जाओ

शून्य होने से डरते क्यों हो, घबड़ाते क्यों हो? बूंद की तरह डरो मत सागर के किनारे खड़े होकर, क्योंकि बूंद अगर सागर में गिर जाये तो सागर हो जायेगी। अगर किनारे पर पड़ी रह गयी तो बूंद ही रह जायेगी। सीमा तड़पायेगी, दुख देगी। असीम के साथ ही सुख हो सकता है। अल्प में कहां सुख, कैसा सुख?

210. आनंद की दिशा

मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है--परम सुख की, उसे हम आनंद कहें। और धार्मिक व्यक्ति वह है, जो स्वयं भी आनंद की तरफ निरंतर गति करता है और चारों तरफ भी निरंतर आनंद बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दुख देता, न वह दूसरे को दुख देने की आकांक्षा करता है; न उसके मन में दुख का कोई आदर है, न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर धार्मिक हम कहें तो परम आनंद की दिशा धर्म बनता है। नहीं तो अब तक तो वह परम दुख की दिशा बना हुआ है!

211. चैतन्य =सम्यकता

तो महावीर कहते हैं, 'सम्यक दृष्टियुक्त मनुष्य अपनी इंद्रियों के द्वारा चेतन तथा अचेतन द्रव्यों का जो भी उपभोग करता है, वह सब कर्मों की निर्जरा में सहायक होता है।' वह इसीलिए जीता है ताकि जीवन के पार जा सके। वह इसीलिए भोजन करता है ताकि भगवत्ता को पा सके। वह इसीलिए जल पीता है, ताकि शरीर तृप्त हो, शांत हो, तो अंतर्गमन हो सके। उसकी दृष्टि हर घड़ी उस भीतर के सत्य पर लगी रहती है। वह उसी के लिए सारे जीवन को उपकरण बना लेता है।

श्रीमद्भागवत में एक वचन हैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः! संत पुरुष तीर्थों को पवित्र करते हैं। तीर्थों के कारण कोई पवित्र नहीं होता; संत पुरुषों के कारण तीर्थ बन जाते हैं। जहां संत पुरुष बैठता है वहीं तीर्थ बन जाता है। जहां तीर्थंकर चलते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं।

गंगा की खोज मत करो। तुम गंगा कभी न पहुंच पाओगे। तुम दृष्टि को, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाओ--गंगा तुम्हारी खोज करती चली आएगी। नदी, नाला कोई भी तुम्हारे पास से गुजर जायेगा, गंगा जैसा पवित्र हो जायेगा। वास्तविक मूल्य, आत्यंतिक मूल्य तुम्हारे चैतन्य का है।

212. ज्ञान नहीं, ध्यान

कागजों में परमात्मा से मिलन नहीं हो सकता। परमात्मा से मिलन करना हो तो अपनी स्वयं की चेतना की सीढ़ियों में उतरना पड़ेगा; अपनी स्वयं की गहराइयों से गहराइयों में जाना पड़ेगा। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, लेकिन तुम्हारी आत्यंतिक गहराई को छूना पड़ेगा। शास्त्रों मेंनहीं, वरन स्वयं में। ज्ञान मेंनहीं, वरन ध्यान में। शब्द में नहीं मिलेगा, मिलेगा मौन में।

213. ध्यान में है गति

वैज्ञानिक कहते हैं कि निरीक्षण करने के साथ, वस्तुएं भी वही नहीं रह जातीं जैसी वे पहले थीं। उनमें भी रूपांतरण हो जाता है। यह तो हद हो गयी। परमाणु को देखने के साथ ही व्यवहार बदल जाता है--इससे एक बात सिद्ध होती है कि परमाणु भी चैतन्य है। चैतन्य के अतिरिक्त तो ऐसा नहीं हो सकता।

तो तुम जब वृक्ष को गौर से देखते हो तो तुम यह मत सोचना कि वृक्ष वही रहा--बदल गया। इस पर बहुत प्रयोग हो रहे हैं। अगर तुम एक वृक्ष को चुन लो बगीचे में और रोज उसके पास जाकर उसपर ध्यान दो, दुलराओ, पुचकारो, प्यार करो, उससे थोड़ी बात करो, थोड़ी गुफ्तगू करो, अपनी कहो, थोड़ी उसकी सुनो और ठीक उसके ही मुकाबले, वैसा ही दूसरा वृक्ष हो उसपर ध्यान मत दो। पानी दो, खाद दो, सब बराबर- सिर्फ ध्यान मत दो। तुम अचानक हैरान होओगे। जिस वृक्ष को ध्यान दिया वह दुगुनी गति से बढ़ता है।

अब तो इसके वैज्ञानिक प्रमाण भी हैं। उसमें जल्दी फूल आ जाते हैं। और फूल उसके बड़े होंगे। खाद और पानी में कोई फर्क नहीं है। दोनों वृक्ष एक साथ रोपे गए थे, एक ऊंचाई के थे; लेकिन जल्दी ही, जिसको ध्यान दिया गया था वह बढ़ जायेगा, जिसको ध्यान नहीं दिया गया, उपेक्षित, दुर्बल, दीन रह जायेगा।

214. स्वर्ग की तैयारी

स्वर्ग चाहते हो? तो एक बात पक्की समझ लेना- मिटना होगा, अहंकार को विदा देनी होगी, ना-कुछ होने की तैयारी दिखानी होगी।

215. परम सौंदर्य है प्रभु

परमात्मा उतरता है एक नृत्य की भांति, एक गीत की भांति। मगर उतरता उसी हृदय में है, जो मस्त है। मैं तुम्हें मस्ती सिखा रहा हूं। मैं तुम्हें सिद्धांत नहीं दे रहा; मैं तुम से कहता ही नहीं कि परमात्मा को मानो। मैं तो कहता हूं: फूलों को मान लो, परमात्मा का मानना अपने से आ जायेगा। मैं तो कहता हूं: चांद-तारों को मान लो; अगर परमात्मा है तो चांद-तारों से धीरे-धीरे तुम में उतर आयेगा। इस जगत के सौंदर्य को मान लो। इस जगत का अपरिसीम यह जो आनंद है, यह जो उत्सव चल रहा है--वृक्षों में, पौधों में, पशुओं में, मनुष्यों में--यह जो अनंत-अनंत लीला फैली है, इसको मान लो, इसको जान लो।

216. साक्षी= समाधि+मोक्ष

मोक्ष का अर्थ है- जहां सारे कर्मों के पार, चेतना अपने को अनुभव करे। जब तक कर्म है तब तक बंधन है। पाप करोगे, दुख पाओगे; पुण्य करोगे, सुख पाओगे। जैसे कोई नीम के बीज बोएगा तो नीम के फल काटेगा और कोई आम बोएगा तो आम की मिठास का अनुभव करेगा। बस ऐसे ही, सीधा-साफ गणित है। लेकिन हमारे भीतर कोई है जो न तो कड़वापन अनुभव करता है और न मिठास--जो दोनों के पार है; जो दोनों को देखता है। जो देखता है कि जीभ पर कड़वाहट का अनुभव हो रहा है, जीभ पर मिठास का अनुभव हो रहा है; लेकिन मैं तो अलग हूं, मैं तो साक्षी हूं। इस साक्षी में थिर हो जाना समाधि; इस साक्षी के परिपूर्ण अनुभव को उपलब्ध हो जाना मोक्ष।

217. गुरू और अदृश्य चेतना

प्रयाग को हम महातीर्थ कहते हैं। यहां भौतिक प्रयाग से प्रयोजन नहीं है। भौतिक प्रयाग तो केवल प्रतीक है--एक आध्यात्मिक बात को प्रकट करने का उपाय है। कहते हैं प्रयाग में तीन नदियों का मिलन हो रहा है--गंगा, यमुना और सरस्वती। गंगा और यमुना दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। सरस्वती अदृश्य है। ऐसी ही दशा प्रत्येक व्यक्ति की है। प्रत्येक व्यक्ति प्रयागराज है, उसमें भी तीन धाराओं का मिलन हो रहा है। देह दिखाई पड़ती है, मन भी दिखाई पड़ता है--ये गंगा, ये यमुना। लेकिन इन दोनों के बीच में झर-झर नीर बह रहा है चैतन्य का, वह दिखाई नहीं पड़ता। उस चैतन्य का नाम ही सरस्वती है। इसलिए सरस्वती को हमने ज्ञान की देवी कहा है--प्रज्ञा की देवी।

गुरु ही इसकी पहचान करवा सकता है। वही गंगा, यमुना को अलग छांट कर बता सकता है और दोनों के बीच में छिपी हुई अदृश्य चेतना की धार--साक्षी से मिलन करवा सकता है।

218. अर्जित और प्रदत्त

है क्या हमारे पास? शरीर हमारा है? जमीन हमारी है? ज्ञान हमारा है? क्या है हमारे पास? और हो सकता है, धन भी हमारा हो, जमीन भी हमारी हो, लेकिन एक बात पक्की है कि वह जो हमारे भीतर गहरे में छिपा है, वह हमारा बिल्कुल नहीं है क्योंकि न तो हमने उसे बनाया है, न हमने उसे खोजा है, न हमने उसे पाया है।

तो धन तो हो भी सकता है आपका हो, लेकिन आप अपने बिल्कुल नहीं हैं। क्योंकि कह सकते हैं, धन मैंने कमाया। लेकिन यह जो भीतर दीया जल रहा है चेतना का, यह तो प्रभु का ही दिया हुआ है। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। आप अपने बिल्कुल नहीं हैं, इसलिए देंगे क्या?

219. संसार और साक्षीभाव

देह तो सदा मन के पीछे जाती है। मन को वेश्यालय जाना है, तो देह वेश्यालय चली जाती है। मन को प्रभु के मंदिर जाना है, तो देह प्रभु के मंदिर ले जाती है। चोरी करो तो साथ है, दान दो तो साथ है। देह तो तुम्हारी सेवा में रत है। मन को बदलो। और मन को बदलने की प्रक्रिया ध्यान है, त्याग नहीं। शरीर को सताना नहीं, गलाना नहीं; वरन सोई हुई चेतना को जगाना, साक्षी को जगाना।

मेरे लिए संन्यास का मौलिक अर्थ है– साक्षीभाव। और साक्षीभाव के लिए संसार सबसे सुविधापूर्ण अवसर है। इसीलिए तो परमात्मा ने तुम्हें संसार दिया। परमात्मा तुम्हें संसार देता है और तुम्हारे तथाकथित महात्मा कहते हैं संसार छोड़ो। मैं तुम्हारे महात्माओं के विरोध में हूं, क्योंकि मैं परमात्मा के पक्ष में हूं। मैं कहता हूं: संसार छोड़ो मत, संसार में जागो! संसार एक अपूर्व अवसर है जागने का– एक चुनौती है!

220. संन्यास : प्रेम और ध्यान

संन्यास के पक्षी के दो पंख हैं: प्रेम और ध्यान। जहां संन्यास है, वहां प्रेम है, वहां ध्यान है। ध्यान का अर्थ होता है: अकेले में आनंदित होने की क्षमता; एकांत में भी रसमग्न होने की पात्रता। और प्रेम का अर्थ होता है: संग–साथ में आनंदित होने की क्षमता। ध्यान तो है, जैसे कोई बांसुरी अकेली बजाए; और प्रेम है आर्केस्ट्रा––बांसुरी भी हो; तबला भी ताल दे; सितार भी बजे; और–और साज हों। प्रेम है: दो व्यक्तियों के बीच या अनेक व्यक्तियों के बीच जुगलबंदी। ध्यान है: एकांत में, अकेले में, अपने ही प्राणों के साथ आनंद–भाव। प्रेम है: वार्तालाप, संवाद, मैं और तू के बीच सेतु का बनाना। ध्यान है: स्वयं की पर्याप्तता। नहीं कुछ चाहिए; बस अपना होना काफी है।

221. जागरण का अर्थ?

तो जब तक तुम्हें प्रेम की लौ न जगे, जब तक तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया न जले, तब तक तुम्हारा वैराग्य थोथा रहेगा, ऊपरी रहेगा। ऐसे वैराग्य से बचना। ऐसे पांडित्य से सावधान रहना।

अब तो मैं बैराग भरी, सोवत से मैं जागि परी।

पलटूदास कहते हैं, जिस दिन वैराग्य मुझमें भरा, उस दिन जो घटना मेरे भीतर घटी, वह थी--सोवत से मैं जागि परी! उसको ही मैं साक्षी-भाव कह रहा हूं। सोना यानी कर्ता-भाव। सोना यानी तादात्म्य। सोना अर्थात यह मानना कि मैं शरीर हूं, मन हूं, यह हूं, वह हूं, नाम हूं, जाति हूं, वर्ण हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं। ये सब नींद। ये बस सोना। ये बस सपने। जागने का अर्थ कि मैं न देह हूं, न मन हूं, न ब्राह्मण, न शूद्र, न हिंदू, न मुसलमान; मैं केवल शुद्ध चैतन्य हूं--साक्षीमात्र, सच्चिदानंद! इसका नाम जागना।

222. प्रीति और चेतना का जागरण

चेतना को जगाने का सम्यक उपाय हैः प्रीति! परमात्मा के प्रति प्रेम जगे। यही प्रेम जो तुमने अभी क्षुद्र चीजों से लगा रखा है--किसी ने धन से, किसी ने पद से, किसी ने प्रतिष्ठा से--यही सारा प्रेम तुम परमात्मा की तरफ उंडेल दो, इसे एकाग्र करो। यह जो हजार धाराओं में बंट गया है--पलटू कहते हैं, यह जो पांच-पच्चीस हो गया है--इसको इकट्ठा करो, एक धारा बनाओ, ताकि यह सागर तक पहुंच जाए।

223. आत्मिक स्वास्थ्य

स्वस्थ शब्द का अर्थ समझ लो तो रोग का अर्थ समझ में आ जायेगा। स्वस्थ का अर्थ होता है स्वयं में स्थित हो जाना। यह शब्द बड़ा प्यारा है। स्वस्थ का अर्थ होता है स्वयं में ठहर जाना। जो चीज भी तुम्हें स्वयं से दूर ले जाये, वही रोग। जो तुम्हें स्वयं से भटकाये, अलग करे, तोड़े, अस्वस्थ करे--वही रोग। कौन करता है तुम्हें अपने से दूर? तुम्हारी वासना, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें भविष्य में भटकाती है।

224. बुद्धों की सृजनात्मकता

सृजनात्मकता के सीमित अर्थ मत लेना। क्योंकि बुद्ध ने न तो कोई कविता रची, न कोई मूर्ति बनाई, न कोई पेंटिंग। लेकिन बुद्ध ने जो भी किया वह सभी सृजनात्मक है। लोगों की आत्माएं रंग दीं! पत्थर जैसे लोगों में परमात्मा की मूर्ति को निखार कर प्रकट कर दिया! अनेक-अनेक लोगों में चेतना के दीये जला दिए! उठे तो सृजन, बैठे तो सृजन। मिट्टी को छुआ तो सोना बना दिया! सृजनात्मकता के सीमित अर्थ नहीं हैं। बुद्धों का सृजन सूक्ष्म है। वे कोई छेनी-हथौड़ी लेकर पत्थर में मूर्ति खोदेंगे, ऐसा नहीं है। पर उनके हाथ में भी छेनी-हथौड़ी है--दिखाई नहीं पड़ने वाली। और वे भी मूर्ति निर्मित करते हैं--लेकिन चैतन्य की। चिन्मय; मृण्मय नहीं। वे भी उघाड़ते हैं परमात्मा को, परम सौंदर्य को, मगर देखने वाले ही देख सकते हैं। सबको नहीं दिखाई पड़ेगा। वे भी वीणा के तार छेड़ते हैं, मगर वह वीणा तुम्हारे हृदय की वीणा है। और जिनके तार छिड़ गए हैं, वही जानते हैं। जिन्होंने पीया है, वही उस स्वाद को पहचानते हैं।

225. होश और मौलिकता

मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं, सीधी–सादी बात है। मैं तुम्हें आचरण नहीं सिखा रहा। क्योंकि आचरण सिखाया गया सदियों तक, सिर्फ पाखंड पैदा हुआ, आचरण पैदा नहीं हुआ। मैं तुम्हें नीति नहीं सिखा रहा। क्योंकि नीति सिखा–सिखा कर मर गए लोग, न वे खुद नीतिवान हो सके, न दूसरों को नीतिवान कर सके। मैं तुम्हें एक नई ही बात कह रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं: सब नीति, सब आचरण– सब बाह्य उपचार हैं। तुम चैतन्य को जगाओ। तुम चेतना बनो। तुम ज्यादा से ज्यादा चैतन्य हो जाओ। तुम्हारी चैतन्यता की क्षमता में ही तुम्हारे जीवन की क्रांति छिपी है। तुम जितने होश से भर जाओगे उतना ही तुम्हारा जीवन सहज, सीधा, नैसर्गिक, सरल, सत्य और प्रामाणिक हो जाएगा।

226. संसार है सराय

जब सम्राट तक को बैठने के लिए स्वर्ण–सिंहासन चाहिए तो परमात्मा के लिए भी कोई सिंहासन भीतर बनाओ। स्वर्ण–सिंहासन परमात्मा के काम नहीं आएगा। चेतना का सिंहासन बनाओ। समाधि का सिंहासन बनाओ। बुद्धत्व का सिंहासन बनाओ। तो फिर तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार है। तत्क्षण स्वीकार हो जाता है! तुम भेजो भी नहीं निमंत्रण, तो भी परमात्मा आकर स्वयं द्वार पर दस्तक दे देता है। तुम्हारी तैयारी पूरी हुई कि परमात्मा प्रकट होता है।

लेकिन तुम पड़े हो सराय में। एक से छूटते हो तो दूसरे में उलझ जाते हो। सोचते हो शायद यह घर होगा। उससे छूटे तो तीसरे में उलझ जाते हो। और यह संसार सरायों का विस्तार है, बहुत बड़ा विस्तार है! इस संसार में उलझने की हमारी जो आदत है, उसका नाम माया है।

227. साक्षी और स्वप्न वैरी हैं

स्वप्न छोड़ना कठिन है। स्वप्न छोड़ने का सूक्ष्म विज्ञान है। उस विज्ञान का नाम ही ध्यान है। साक्षी बनो। जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर साक्षी सघन होगा, वैसे-वैसे स्वप्न क्षीण हो जाते हैं। जिस दिन साक्षी अपनी परिपूर्णता में विराजमान होता है, स्वप्न बचते ही नहीं। जैसे आकाश बिल्कुल बादलों से खाली हो जाए और सूरज अपनी पूरी जगमग में प्रकट हो, ऐसे जब तुम्हारे भीतर स्वप्न नहीं बचते तो तुम्हारे भीतर छिपा हुआ चैतन्य अपनी समग्रता में प्रकट होता है। वही परमात्म-मिलन है। इसे पाने कहीं और नहीं जाना है। इसे पाने अपने घर वापस आना है।

228. अपने ही कुंभ में डुबकी

संगम के प्रतीक को समझना। गंगा-यमुना मिल जाती हैं तो भी अलग-अलग दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि उनके जल का रंग अलग-अलग है। किंतु सरस्वती अदृश्य है। ऐसी ही मनुष्य की दशा है। तुम्हारे भीतर शरीर और मन तो दिखाई पड़ते हैं; यद्यपि मिले-जुले हैं, फिर भी उनकी धारा अलग-अलग दिखाई पड़ती है, मगर चेतना दिखाई नहीं पड़ती। चेतना ही सरस्वती है। सरस्वती देवी है ज्ञान की, चैतन्य की, ध्यान की।

तो मन, शरीर और आत्मा, इन तीनों का मिलन तुम्हारे भीतर हो रहा है; यही है प्रयागराज, तीर्थों का तीर्थ! कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। कुंभ मेलों में मत भटको! कुंभ मेला तुम्हारे भीतर रोज ही लगा हुआ है। तुम्हीं हो कुंभ! इसमें ही डुबकी मारो!

229. परमात्मा समरस है

जिसको तुम खोज रहे हो, तुम्हारे भीतर बैठा है। अपनी खोज के कारण ही तुम उसे नहीं खोज पा रहे हो। तुम दौड़े चले जाते हो। सारी दिशाओं में खोजते हो, थकते हो, गिरते हो। हर बार जीवन कब्र में समाप्त हो जाता है। जीवन से मिलन नहीं हो पाता। और जिसे तुम खोजने चले हो, जिस मालिक को तुम खोजने चले हो, उस मालिक ने तुम्हारे घर में बसेरा किया हुआ है। तुम जिसे खोजने चले हो, वह अतिथि नहीं है, आतिथेय है। खोजनेवाले में ही छिपा है।

है दिल में सही अंखियां उलटि करि ताहि चितइए।

लेकिन अगर उसे देखना हो, अगर उसके प्रति चैतन्य से भरना हो तो आंखें उलटाना सीखना पड़े। आंख उलटाना ही ध्यान है। ऐसा मत सोचना कि तुम्हारे पास ध्यान नहीं है। तुम्हारे पास ध्यान है– उतना ही, जितना बुद्धों के पास। रत्ती–भर कम नहीं। परमात्मा किसी को कम और ज्यादा देता नहीं। उसके बादल सब पर बराबर बरसते हैं। ऐसा मत सोचना कि कृष्ण को कुछ ज्यादा दिया था, कि बुद्ध को कुछ ज्यादा दिया था, कि सुंदरदास को जरूर कुछ ज्यादा दे दिया होगा– कि ये रोशन हुए, कि ये जगमगाए। न केवल खुद जगमगाए, बल्कि इनकी जगमगाहट से और भी लोग जगमगाए। दीयों से दीए जलते चले गए।

230. प्रेम की सीढ़ियां

प्रार्थना परम प्रेम है, पराकाष्ठा है प्रेम की। प्रेम की तीन सीढ़ियां हैं। एक तो साधारण प्रेम––मित्र–मित्र में, पत्नी–पति में, मां–बेटे में, भाई–भाई में। एक असाधारण प्रेम––शिष्य और गुरु में। और एक साधारण–असाधारण दोनों का अतिक्रमण कर जाए, तीसरा प्रेम––आत्मा और परमात्मा में, बूंद में और सागर में।

231. अभिनय छोड़ो, सच्चिदानंद बनो

मैं कोई सैद्धांतिक बात नहीं कर रहा हूं। अपने जीवन का निरीक्षण करो, वहां तुम्हें एक नहीं, हजार गवाहियां मिलेंगी।

इस यांत्रिकता में ऊपर–ऊपर तुम एक होते हो, भीतर–भीतर तुम दूसरे होते हो। क्योंकि इस यांत्रिकता से तुम्हारी चेतना का मेल हो ही नहीं सकता। तो तुम्हारा जीवन ज्यादा से ज्यादा एक अभिनय, एक प्रवंचना, एक धोखा होता है। तुम्हारे चेहरे पर मुखौटे हैं। तुम्हारे असली चेहरे का तुम्हें पता नहीं है। तुम क्या कहते हो, वह वह नहीं है जो तुम कहना चाहते हो। और तुम क्या करते हो, वह भी वही नहीं है जो तुम करना चाहते हो, करना चाहते थे।

तुम सोचते कुछ हो, करते कुछ हो। कहते कुछ हो, होते कुछ हो। सारी पृथ्वी एक झूठा नाटक हो गयी है। सच्चे आदमी नहीं हैं, क्योंकि सच्चा जीवन नहीं है।

जो भीतर से जिएगा और चैतन्यपूर्वक जिएगा, वही व्यक्ति एकस्वर हो सकता है। और जहां एकस्वर है, वहीं सच्चिदानंद का वास है।

232. अखंड संन्यासी

मैं चाहता हूं मेरा संन्यासी पूरा मनुष्य हो, अखंड मनुष्य हो। उसमें मरुस्थल जैसी शांति भी हो, सन्नाटा भी हो, विस्तार भी हो। बगिया जैसे फूल भी हों, झरने भी हों, कोयल भी बोले, पपीहा भी पुकारे। वह अपने को भी जाने और विराट को भी। कभी आंख बंद करके जाने; कभी आंख खोल कर जाने। क्योंकि बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। ध्यान से भीतर को जाने, प्रेम से बाहर को जाने।

233. निराशा और अंतर्यात्रा

अगर मुमकिन हो तो सौ–सौ जतन से

अज़ीज़ो काट लो यह जिंदगी है।

लोग काट ही तो रहे हैं। समय काट रहे हैं। जिंदगी काट रहे हैं। एक ऐसा जीवन भी है, जो न कटता है न काटा जा सकता है। अविच्छिन्न! अखंड! शाश्वत! समय के पार! देह में आबद्ध नहीं। मन में सीमित नहीं। और वह चैतन्य तुम्हारे भीतर मौजूद है। वही तुम हो! तत्त्वमसि! पर भीतर जाओ, तब।

जब तक बाहर की आशा है, तुम भीतर जाओगे नहीं! बाहर की आशा निराशा हो जाए तो भीतर जाओ।

बुद्ध के बड़े प्यारे वचन हैं कि धन्यभागी हैं वे जो हताश हो गए, जिनका जीवन बाहर से बिल्कुल हताश हो गया है। इसे दुर्दिन मत मानना। इसे सुदिन मानना। जिस दिन तुम बाहर से बिल्कुल हताश हो जाओगे, उसी दिन ठिठकोगे, उसी दिन रुकोगे, दौड़ बंद होगी। और जो ऊर्जा संसार में छितरी जाती थी, इकट्ठी होगी, सिमटेगी, अंतर्यात्रा शुरू होगी।

234. मन–चेतना+सत्य = आनन्द

हमारे मन का ही सारा खेल है। जैसा हम पकड़ लें, बस वैसा ही मालूम होने लगता है। ऋषि कहता है, इस मन पर अंकुश रखना पड़े, इस मन को धीरे–धीरे विसर्जित करना पड़ेगा और वह क्षण लाना पड़ेगा, जहां हम कह सकें, अब कोई मन नहीं। इधर रह गई चेतना, उधर रह गया सत्य। जहां मन नहीं, वहां चेतना और सत्य का मिलन हो जाता है। वहीं आनंद है। और वहीं नित्य की प्रतीति और अनुभूति है।

235. अकम्प का अमृतरस

सुंदरदास कहते हैं– हमारे गुरु दीन्हि एक जड़ी!

वही है जड़ी, जो गुरु ने दी! उसे मौन कहो, ध्यान कहो। जो भी नाम तुम देना चाहो, दे दो! लेकिन उसका स्वाद निःशब्दता का है। सारे गुरुओं ने शब्द छीन लेने चाहे, शास्त्र हटा देने चाहे, तुम्हें मौन करना चाहा, तुम्हें शांत करना चाहा। तुम्हारे भीतर विचारों की तरंगें विदा हो जाएं। तुम निस्तरंग हो जाओ। कोई लहर न उठे। बस जहां तुम्हारी लहराती चेतना गैर–लहराती हो गयी, जहां तुम्हारी झील चेतना की शांत हो गयी, कोई तरंग नहीं, कोई लहर नहीं– बस वहीं अमृत–रस बह उठता है! अमृत–रस तो बह ही रहा है, लेकिन तरंगों में तुम इतने उलझे हो, विचारों में तुम इतने डूबे हो कि तुम्हें सुविधा नहीं, अवकाश नहीं, कि अमृत–रस को चख सको, देख सको।

236. सब जुड़े हैं

बूंद को सागर का कोई भी पता नहीं है, लेकिन फिर भी बूंद जब तक सागर न हो जाए तब तक तृप्त नहीं हो सकती। और अंधेरी रात में जलते हुए एक छोटे से दीए को क्या पता होगा कि सूरज के बिना वह न जल सकेगा। लेकिन सूर्य कितना ही दूर हो, वह जो छोटा सा अंधेरे में जलने वाला दीया है, उसकी रोशनी भी सूर्य की ही रोशनी है। और आपके गांव में आपके घर के पास छोटा सा जो झरना बहता है, उसे क्या पता होगा कि दूर के सागरों से जुड़ा है! और अगर सागर सूख जाएं तो यह झरना भी तत्काल सूखकर समाप्त हो जाएगा! झरने को देखकर आपको भी ख्याल नहीं आता कि सागरों से उसका संबंध है। आदमी भी ठीक ऐसी ही स्थिति में है। वह भी एक छोटा सा चेतना का झरना है। और उसमें अगर चेतना प्रकट हो सकी है तो सिर्फ इसीलिए कि कहीं चेतना का कोई महासागर भी निकट में है– जुड़ा हुआ, संयुक्त, चाहे ज्ञात हो, चाहे ज्ञात न हो।

237. संन्यास में नियंत्रण कैसा!

ध्यान रहे, धर्म और नीति के रास्ते बड़े अलग हैं। नीति के रास्ते से अनीति कभी समाप्त नहीं होती। धर्म के रास्ते से अनीति का कोई पता ही नहीं चलता। लेकिन नैतिक आदमी धर्म से भी डरता है क्योंकि उसे डर लगता है कि अगर अनीति पर कोई नियंत्रण न रहे, तो फिर क्या होगा? उसे पता ही नहीं है कि चेतना की ऐसी दशा भी है जहां नियंत्रण की कोई जरूरत ही नहीं होती। चेतना की इतनी प्रबुद्ध स्थिति भी है जहां विकार सामने आने की हिम्मत ही नहीं करते। इतना जागरूक व्यक्तित्व भी होता है, जहां अंधेरा निकट आने का साहस नहीं जुटा पाता। कोई नियंत्रण नहीं है।

संन्यास धर्म की परम आकांक्षा है। संन्यासी वह नहीं है जो नियंत्रित है, कंट्रोल्ड। संन्यासी वह नहीं है जिसने अपने ऊपर संयम थोप लिया। संन्यासी वह है जो इतना जागा कि संयम व्यर्थ हो गया, नियंत्रण की कोई जरूरत न रही।

238. समझ पर है सब कुछ

अगर अपने घर के आंगन को आकाश के साथ एक करना हो, तो घर के आंगन की दीवारें तो तोड़ ही देनी पड़ेंगी। अगर आप दीवारों को आंगन समझते थे, तो आपको लगेगा भारी नुकसान हुआ; और अगर दीवारों के बीच में घिरे हुए आकाश को आंगन समझते थे, तो समझेंगे कि लाभ ही लाभ है। वह आपकी समझ पर निर्भर करेगा। अगर आपने अपने अहंकार की सीमा को समझा था, यही मैं हूं, तो आप समझेंगे मिटे। अगर आपने अपने अहंकार के भीतर घिरे हुए शून्य को, चैतन्य को, भगवत्ता को समझा था, यही मैं हूं, तो दीवारें गिर जाने से अनंत के साथ एक हो गया। विराट उपलब्धि है फिर। खोना जरा भी नहीं है, पाना ही पाना है।

239. परिपूर्णता का सवाद

मेरा संदेश क्षण में जीने का है––और क्षण में इतनी परिपूर्णता से जीने का है, जैसे कि दूसरा क्षण कभी होगा ही नहीं; जैसे बस यही क्षण है। और सच में यही क्षण है, दूसरे का क्या भरोसा है? आए न आए। बस यही क्षण है। इसको हीं त्वरा से जीं लो, समग्रता से जीं लो। मत कल के लिए स्थगित करो। मत कहो कि कल जीएंगे। मत कहो कि सांझ जीएंगे। सुबह है तो सुबह जींओ। सांझ है तो सांझ जींओ। जो हाथ में मिला है उसको पूरा का पूरा पी लो, उसमें डूब जाओ। आएगा दूसरा क्षण तो उसमें भी डूब लेंगे; नहीं आएगा तो हमारा खोता क्या है? हम इस क्षण को पूरा जीं लिए। और एक क्षण को भी जिसने पूरा जी लिया, उसने शाश्वत का स्वाद पा लिया। उस स्वाद को चाहे धर्म कहो, चाहे प्रभु कहो, चाहे सत्य कहो––जो मर्जी हो, जो नाम प्यारा हो वहीं दे दो।

240. शांति और मौन ही काफी

यह जो संसार है, जिसे ऋषि प्रपंच कह रहा है, यह जो फैलाव है, इस फैलाव में जिसे गति करनी है, उसे गति तो बहुत चालाकी, बहुत हिंसा, बहुत बेईमानी, बहुत योजना से करनी पड़ती है। लेकिन इसका जिसे छेदन करना है, इसके पार जिसे जाना है, उसे किसी चालाकी की कोई जरूरत नहीं है। उसे किसी हिंसा की कोई जरूरत नहीं। उसे किसी को धोखा देने की कोई जरूरत नहीं। उसे किसी अनुशासन की कोई जरूरत नहीं। उसका होना पर्याप्त है, बस उसका निर्मल होना पर्याप्त है। उसका शांत और मौन होना पर्याप्त है। फिर वह इस प्रपंच को पार करके परम ब्रह्म की यात्रा पर उस (संन्यासी) की चेतना का तीर निकल जाता है।

241. प्रकाशमय चेतना और अनन्त सूर्य

तो ऋषि कहते हैं, वे (संन्यासी) बारह सूर्यों का दर्शन करते हैं।

बारह सूर्यों का क्या अर्थ है? एक सूर्य को तो हम जानते हैं। बारह सूर्य केवल कहने का ढंग है। वे इतने प्रकाश का भीतर अनुभव करते हैं जैसे कि उनके भीतर बारह सूर्य निकल गए हों। एक सूर्य नहीं, बारह। जैसे उनका सारा अंतर-आकाश सूर्यों से भर गया हो। वे इतने प्रकाशमय चेतना की अवस्था को उपलब्ध होते हैं, जैसे भीतर बारह सूर्य जग गए हों।

लेकिन इस क्रम से प्रवेश होः आश्रयरहित हो उनका आसन- निरालंब पीठः, संयोग हो उनकी दीक्षा- संयोगदीक्षा, संसार से छूटना हो उनका उपदेश, दीक्षा संतोष और पावनहो, तो वे बारह सूर्यों के, अनंत सूर्यों के दर्शन को उपलब्ध होते हैं। वे उस परम सूर्य को जानने में समर्थ हो जाते हैं, जो जीवन और चेतना का उद्‌गम, आधार, आश्रय- सब कुछ है।

और ये सूर्य कहीं बाहर खोजने नहीं जाना पड़ता है। ये सूर्य भीतर ही छिपे हैं। लेकिन हम भीतर जाते ही नहीं। बाहर है अंधकार, भीतर है प्रकाश। और बाहर कितने ही सूर्य हों, तो भी अंधकार मिटता नहीं।

242. परमात्मा क्या है?

परमात्मा व्यक्ति नहीं है, एक भाव है- अहोभाव है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है- प्रार्थना की परम स्थिति है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है- ध्यान में उतरी हुई धन्यता है।

परमात्मा व्यक्ति नहीं है- शून्य है। निर्विचार, निर्विकल्प समाधि है।

243. झोली में आकाश

उत्सव का अर्थ है : अनुग्रह। उत्सव का अर्थ है : धन्यवाद। उत्सव का अर्थ है : मुझ अपात्र को इतना दिया! इतना जिसकी न मैं कल्पना कर सकता था न कामना! मेरी झोली में पूरा आकाश भर दिया! मेरे हृदय में पूरा अस्तित्व उंडेल दिया! मेरे इस छोटे से घट में शाश्वत अमृत ढाल दिया! अब मैं क्या करूं?

244. शाश्वत से परम रहस्य तक

ऋषि तो बहुत पहले से कहते रहे हैं कि तुम न स्त्री हो, न तुम पुरुष हो। तुम तो वह हो, जो भीतर से जानता है कि मैं स्त्री हूं, मैं पुरुष हूं। तुम वह ज्ञाता हो।

प्रवेश करना है भीतर। वहां, जहां कोई आवरण नहीं रह जाता। जहां सिर्फ वही रह जाता है, जो जानने की क्षमता है। बस, जानना मात्र एक ऐसी चीज है जिससे हम अपने को अलग नहीं कर सकते, जिससे हमारा तादात्म्य नहीं है, जिससे हमारा स्वरूपगत, जो हमारा स्वरूप है, स्वरूप ही है। और जिस दिन कोई जानने की शुद्ध क्षमता को उपलब्ध होता है, उसी दिन आनंद से भर जाता है। और उसी दिन अमृत से भर जाता है।

इसलिए ऋषियों ने उस स्थिति के लिए कहा है, सच्चिदानंद। सत्, चित, आनंद। सत् का अर्थ है, वह जो सदा रहेगा– द इटरनल, द इटरनली ट्रू, शाश्वत रूप से जो सत्य होगा। सत् का अर्थ है, जो कभी भी अन्यथा नहीं होगा। चित का अर्थ है – चैतन्य, ज्ञान, बोध; जो सदा बोध से भरा रहेगा, जिसका बोध कभी नहीं खोएगा। और आनंद का अर्थ है– ब्लिस, जो सदा सुख–दुख के पार, एक परम रहस्य में, आनंद में, मस्ती में डूबा रहेगा। एक ऐसी मस्ती में, जो बाहर से नहीं आती, जिसके स्रोत भीतर हैं। उस स्वभाव को कहा है – सच्चिदानंद।

245. संग्रह और स्वभाव

संन्यासी अ–मन में ही गति करते हैं– उन्मनी गति।

एक ही उनकी गति है, उस दिशा में, जहां मन नहीं। उनकी एक ही यात्रा है और वह उस तरफ है जहां मन नहीं। वे मन को छोड़कर बढ़ते चले जाते हैं। एक दिन आता है कि मन गिर जाता है। हम भी गति करते हैं, पर मन में, और मन के लिए। हम जो भी करते हैं, वह मन का पोषण है। मन को हम बढ़ाते हैं, मजबूत करते हैं। हमारे अनुभव, हमारा ज्ञान, हमारा संग्रह– सब हमारे मन को मजबूत और शक्तिशाली करने के लिए है। बूढ़ा आदमी कहता है, मुझे सत्तर साल का अनुभव है। मतलब? उनके पास सत्तर साल पुराना मजबूत मन है। और जैसे शराब पुरानी अच्छी होती है, लोग सोचते हैं, पुराना मन भी अच्छा होता है। वैसे, शराब और मन में कुछ तादात्म्य है, एकरसता है। जैसे शराब और नशीली हो जाती है, वैसे ही मन जितना पुराना होता है, उतना नशीला हो जाता है। चेतना नहीं बदलती, चेतना तो वही बनी रहती है। मन की परतें चारों तरफ घिर जाती है। मांग वही बनी रहती है, वासना वही बनी रहती है।

लेकिन मार्ग क्या है? मार्ग है अ–मन, नो–माइंड। धीरे–धीरे मन को गलाना, छुड़ाना, हटाना, मिटाना है। ऐसा कर लेना है कि भीतर चेतना तो रहे, मन न रह जाए। चेतना और बात है। चेतना हमारा स्वभाव है। मन हमारा संग्रह है।

246. केवल दिशा परिवर्तन

संसार के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उस प्रेम को परमात्मा की तरफ मोड़ो जरूर; मगर संसार के प्रति घृणा का संबंध मत बना लेना, नहीं तो चूक जाओगे।

247. दमन संन्यास के विपरीत

संन्यासी दबाने में नहीं लगता, नाट इन सप्रेशन। फ्रायड ने तो अभी इस सदी में आकर कहा कि सप्रेशन, दमन जो है, वह रोग है। ऋषि सदा से कहते रहे हैं कि दमन रोग है। दमन से कुछ होगा नहीं। दबाकर क्या होगा? जिसे मैं दबाऊंगा, वह मेरे भीतर घुस जाएगा, और गहरे में उतर जाएगा और अचेतन में जकड़ जाएगा। जिसे मैं दबाऊंगा, वह मेरी गर्दन को और जोर से पकड़ लेगा।

248. सम्राट कौन है?

भीतर... भीतर परम मौन, सन्नाटा, शांति। वहां कोई तरंग भी न उठे, वहां कोई लहर न उठे, वहां जीवन की जो ऊर्जा है, चेतना है, वह कंपित न हो। ऐसी निष्कंप मौन, शांति– जहां हवा का एक झोंका भी नहीं, उसे आंतरिक संपदा कहा है।

आचरण ईश्वर जैसा, अंतस निर्वाण जैसा– शून्य, शांत, मौन। ऋषि कहता है, यही संपदा है, जो छीनी नहीं जा सकती। इसके अतिरिक्त जो किसी और चीज को संपदा समझकर बैठे हैं, वे अति दीन हैं, दरिद्र हैं। उनकी दरिद्रता को वे कितना ही छिपाने की कोशिश करें, वह जगह–जगह से प्रकट होती रहती है। धन उनके पास होता है, वे स्वयं धनी नहीं हो पाते, क्योंकि धन उनसे किसी भी क्षण छीना जा सकता है। और धन न भी छीना जाए, तो भी धन सिर्फ धनी होने का धोखा है। क्योंकि भीतर की दीनता तब तक नहीं मिटती, जब तक तनाव न मिट जाए। जब तक अशांति न मिट जाए, तब तक भीतर समृद्धि का जन्म नहीं होता। जब तक इतना भीतर सघन परमात्मा प्रकट न होने लगे कि चारों तरफ उसकी किरणें बिखरने लगें, तब तक व्यक्ति सम्राट नहीं है। तब तक व्यक्ति हजार–हजार रूपों में गुलाम ही होता है। संन्यासी तो सम्राट है।

249. विपरीत मन के प्रति जागो

जैसे इंद्रिय रूपी पत्रों से ढंका हुआ मंडल होता है, ऐसे हीं ढंकने वाले भाव और अभाव के आवरण को भस्म कर डालने के लिए वे आकाश रूप धारण कर लेते हैं।

मन ढांके हुए है चेतना को। जैसे कोई झींल पत्तों से ढंक गई हो, ऐसे ही, मन सकारात्मक और नकारात्मक– दोनों प्रकार के विपरीत विचारों से ढंका है। भाव और अभाव वाले विचार दोनों हीं मन को ढांके हुए हैं। मन का एक हिस्सा कहता है– ईश्वर है; एक हिस्सा कहता है– नहीं है। मन का एक हिस्सा कहता है किं प्रेम करो; दूसरा हिस्सा कहता है, खतरा हो जाएगा; घृणा को कायम रखो। मन का एक हिस्सा कहता है– दान दे दो। दूसरा हिस्सा कहता है, दान भलेदो, लेकिन जेब काटने का इंतजाम पहले कर लो। विपरीत मन छाए हुए हैं चेतना को। पत्तों हीं पत्तों से भरी हुई चेतना ढंक गई है भीतर।

250. इंद्रियां हैं भ्रांति

यहीं क्षण परम अनुभूति और परम आनंद का क्षण है, जब हमें जन्मने की जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि फिर मरने का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब हमें शरीर ग्रहण नहीं करने पड़ते, तब हमें शरीरों से पैदा होने वाले कष्ट भी नहीं झेलने पड़ते। और जब इंद्रियां हमें नहीं मिलतीं, तब इंद्रियों से जो भ्रांतियां पैदा होती हैं, वे भ्रांतियां भी पैदा नहीं होतीं। तब हम शुद्ध चैतन्य में, शुद्ध सत्य में, शुद्ध अस्तित्व के साथ एक हो जाते हैं। इस एकता का जो ज्ञान है, इस एकता का जो दिशा–निर्देश है, इस परम ऐक्य की जो इंगित व्यवस्था है, ऋषि कहता है, यही निर्वाण दर्शन है।

251. सिर्फ चेतना, बाक़ी कुछ भी नहीं

क्या होगा वहां... उस ताओ की दशा में, उस ऋत में डूबकर क्या होगा? कैसे होंगे हम? क्या होगा हमारा रूप? क्या होगी आकृति? क्या होगा नाम? कोई बचेगा जानने वाला? नहीं बचेगा? क्या होगा?

कोई तुलना नहीं हो सकती, कुछ कहा भी नहीं जा सकता। इशारे सब नकारात्मक हैं। इतना कहा जा सकता है, आप नहीं होंगे। आप बिल्कुल नहीं होंगे। और जो होगा, उसे आपने अपने भीतर कभी नहीं जाना है। इतना कहा जा सकता है, कोई विचार न होगा, यह विचार भी नहीं कि मैं निर्विचार हूं। फिर भी होगी चेतना, लेकिन ऐसी, जिसे आपने कभी नहीं जानी है।

252. एकांत का रस

अपने कमरे में बंद हो जाएं और जो आपकी मूल बीमारी है, उसे प्रकट करें। इसको मेडिटेशन समझें, इसको ध्यान समझें। उसे पूरा निकालें, रोएं-रोएं में प्रकट होने दें। चिल्लाएं, कूदें, फांदें, जो भी हो रहा है उसे होने दें। और पीछे से देखें, आपको हंसी भी आएगी। हैरानी भी होगी। यह मैं कर सकता हूं, यह जान कर भी चकित होंगे आप। मन को विस्मय भी पकड़ेगा कि यह मैं कैसे कर रहा हूं? और अकेले में? कोई होता, तब भी ठीक था।

एक-दो दफे तो आपको थोड़ी सी बेचैनी होगी, तीसरी दफे आप पूरी गति में आ जाएंगे और पूरे रस से कर पाएंगे। और जब आप पूरे रस से कर पाएंगे, तब आपको एक अद्‌भुत अनुभव होगा कि आप कर भी रहे होंगे बाहर और बीच में कोई चेतना खड़ी होकर देखने भी लगेगी। दूसरे के साथ यह कभी होना मुश्किल है या बहुत कठिन है। एकांत में यह सरलता से हो जाएगा। चारों तरफ क्रोध की लपटें जल रही होंगी, आप बीच में खड़े होकर अलग हो जाएंगे।

253. जानकर भी अनजान

जो मनुष्य के अंतरतम को जानते हैं, वे कहते हैं, जो भी जाना जा सकता है, वह मनुष्य जाने ही हुआ है। जो भी इस जगत में कभी भी जाना जाएगा, उसे आप इस क्षण भी जान रहे हैं। सिर्फ आपको पता नहीं है। मनुष्य की अंतस चेतना में वह सब छिपा है, जो कभी भी प्रकट होगा। वृक्ष में जो पत्ते हजार साल बाद प्रकट होंगे, वे भी बीज में छिपे थे। अन्यथा, वे प्रकट नहीं हो सकते हैं। हजार साल बाद आदमी जो जानेगा, आदमी आज भी जानता है। पर जानता नहीं कि जानता है। बाहर खोज-बीन में उलझा हुआ है।

254. बस दूसरों की चिंता

पत्नियों को फिक्र पड़ी है--पतियों को कैसे सुधारें। पतियों को फिक्र पड़ी है--पत्नियों को कैसे सुधारें। सब एक-दूसरे के सुधार में लगे हुए हैं। किसी को जैसे चिंता ही नहीं है इस बात की कि अपनी जिंदगी में भी कुछ बदलाहट करनी है या नहीं। जिंदगी चार दिन की है, कब गुजर जाएगी, पता नहीं। कुछ कर लें। कुछ अपने को सम्हाल लें। कुछ अपने जीवन को मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ा लें, कुछ परमात्मा के निकट पहुंच जाएं। यह जीवन यूं ही न बीत जाए, अकारथ न बीत जाए। कुछ जान लें, कुछ जी लें। कुछ आनंद का, कुछ चैतन्य का अनुभव कर लें। नहीं, इसकी कोई फिक्र नहीं है। पति की शराब कैसे छूटे! छूट ही गई तो फिर क्या होगा? तुम्हें कोई समाधि मिल जाएगी? कोई बुद्धत्व मिल जाएगा? इतने तो पति शराब नहीं पी रहे, उनकी पत्नियों को कौन सा बुद्धत्व मिल गया है? जरा आस-पास तो देखो! कई के पति शराब नहीं पी रहे। उनको क्या मिल गया है?

255. मन है अड़चन

शरीर तो सिर्फ दीवार है। वह तो मजबूत होनी चाहिए। लेकिन भीतर जो मन है, वही महल है, वह खाली होना चाहिए। और उस महल के भीतर भी जो मनुष्य की चेतना है– आत्मा– वह निवासी है। अगर मन खाली हो, तो ही वह निवासी ठीक से रह पाए, तो ही स्पेस और जगह होती है। मन अगर बहुत भर जाता है, तो अक्सर हालत ऐसी होती है कि मकान तो आपके पास है, लेकिन इतना कबाड़ से भरा है कि आप मकान के बाहर ही सोते हैं, बाहर ही रहते हैं। क्योंकि भीतर जगह नहीं है।

256. संघर्ष में संभावना

विचार के तल पर, मरी–मराई लाशों को तुम ढो रहे हो। पिटी–पिटाई धारणाओं को तुम ढो रहे हो। और तुम डरते हो कि कहीं इनको छोड़ा तो कहीं दिशा न भटक जाएं!

उनको पकड़े हो, इसलिए भटकाव है। उनको छोड़ो तो तुम्हारी आंखें धुएं से मुक्त हों। तुम साफ–साफ देखो। तुम्हें भी जीवन दिया है परमात्मा ने। तुम्हें भी चेतना दी है। तुम्हें भी बोध दिया, बुद्धि दी है। तुम समस्याओं से जूझो। अपनी बुद्धि की तलवार को समस्याओं की शिला पर धार दो। अपने चैतन्य को चमकाओ समस्याओं से जूझ कर। उलझो तूफानों से। क्योंकि उसी उलझने में, तूफानों से लड़ने में ही, तुम्हारे जीवन में जो छिपे हुए बीज पड़े हैं, वे फूटेंगे। तुम्हारी जो संभावना है, वह वास्तविक बनेगी।

257. अद्वैत एवं प्रेम : समानार्थी

प्रेम का अर्थ है : मैं अस्तित्व से भिन्न नहीं हूं। अभिन्न, एक हूं। प्रेम का अर्थ है : अद्वैत की प्रतीति।

258. परमात्मा स्त्रैण है

जन्म चाहे पदार्थ का हो या चेतना का, और चाहे पृथ्वी जन्मे या कि स्वर्ग, इस अस्तित्व की गहराई में जो रहस्य छिपा हुआ है, उससे ही सबका जन्म होता है। इसलिए मैंने कहा, जिन्होंने परमात्मा को मदर, मां की तरह देखा, दुर्गा या अंबा की तरह देखा, उनकी समझ परमात्मा को पिता की तरह देखने से ज्यादा गहरी है। अगर परमात्मा कहीं भी है, तो वह स्त्रैण होगा। क्योंकि इतने बड़े जगत को जन्म देने की क्षमता पुरुष में नहीं है। इतने विराट चांद-तारे जिससे पैदा होते हों, उसके पास गर्भ चाहिए। बिना गर्भ के यह संभव नहीं है।

259. तनाव से है नींद

एक और जागरण भी है- जब भीतर किसी नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती- क्योंकि कोई अहंकार नहीं रह जाता, जिसे उतारने के लिए नींद की, बेहोशी की आवश्यकता हो। कोई भीतर अहंकार नहीं रह जाता, तो कोई तनाव नहीं रह जाता। तनाव नहीं रह जाता, तो नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती। शरीर थकेगा, सो लेगा; लेकिन भीतर चेतना जागती ही रहेगी। भीतर चेतना देखती रहेगी कि अब नींद आई; और अब नींद शरीर पर छा गई; और अब नींद समाप्त हो गई; और शरीर नींद के बाहर हो गया। भीतर कोई सतत जाग कर इसे भी देखता रहेगा।

260. भीतर का अनुशासन

मैं कोई अराजकतावादी नहीं हूं। सच पूछो तो मैं जींवन को एक गहरा अनुशासन देना चाहता हूं। लेकिन वह अनुशासन ऊपर से आरोपित नहीं होना चाहिए; वह अनुशासन भीतर के बोध से आविर्भूत होना चाहिए। वह अतीत से संचालित नहीं होना चाहिए; वर्तमान से स्फूर्त होना चाहिए। वह कणाद, कपिल, पतंजलि––इनसे नियामित नहीं होना चाहिए। वह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी चैतन्य की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। जब अनुशासन तुम्हारे भीतर से, तुम्हारे बोध से पैदा होता है, तो उस अनुशासन में एक सौंदर्य होता है, एक सत्य होता है, एक प्रामाणिकता होती है। वह अनुशासन तुम्हें पाखंडी नहीं बनाता।

261. मनुष्य निष्प्रयोज्य है

साधन और साध्य का भेद नहीं है। साधन और साध्य एक ही हैं। यह सारा अस्तित्व ऊर्जा की एक विराट लीला है। मत पूछो कि नियति क्या है। नियति होती है मशीनों की। तुम अगर मशीन बनाते हो तो उसकी नियति होती है। उसे किसी प्रयोजन से बनाते हो। उससे कुछ पैदा करना है, उत्पादन करना है, फैक्टरी बनानी है। मनुष्य का कोई प्रयोजन नहीं होता, कोई नियति नहीं होती। मनुष्य तो परमात्मा का आनंद है।

262. राजनीति और धर्म संगी नहीं

सदियों से गुलामी सिखाई गई है, इसलिए लोग तो गुलाम होने को तैयार हैं। लेकिन स्वयं की मालकियत कठिन मामला है। बड़ी प्रतिभा चाहिए! बड़ी पैनी प्रतिभा चाहिए! स्वयं की मालकियत का अर्थ हैः अपने अचेतन से मुक्त होना, अपने अंधकार से मुक्त होना, अपने अहंकार से मुक्त होना। राजनीति अहंकार को भरती है और धर्म अहंकार से छुटकारा है।

263. स्वयं से परिचय

जहां–जहां जीवन है, वहां–वहां कोई नियति नहीं है। नियति से मुक्त हो जाना, नियति की दृष्टि से मुक्त हो जाना––मोक्ष है, निर्वाण है। यह तो पूछो कि मैं कौन हूं। जरूर पूछो अपने से। मगर इस उपद्रव में मत पड़ना कि मैं किसलिए हूं। उसका तुम कभी कोई उत्तर न पाओगे। इसका उत्तर तो जरूर पाओगे कि मैं कौन हूं। वही उत्तर पाओगे जो सदा पाया गया है। मगर वह उत्तर तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। पाओगे कि चैतन्य हो, द्रष्टा हो, साक्षी हो, सच्चिदानंद हो––सत् हो, चित् हो, आनंद हो। और यह खजाना तुम्हारे भीतर भरा पड़ा है। मत फैलाओ अपनी झोली कहीं और।

264. सामूहिक सम्मोहन को समझो

तुम मंदिर में जाते हो, रामचंद्र की प्रतिमा है, कि बुद्ध की प्रतिमा है, कि कृष्णकी प्रतिमा है, बस एकदम से झुके! लेकिन तुमने एक बात ख्याल की? जैन जाता है कृष्ण के मंदिर में, उसके भीतर कोई झुकने का भाव नहीं उठता! उठता ही नहीं। हिंदू जाता है महावीर की प्रतिमा के सामने, उसके मन में झुकने का कोई भाव नहीं उठता। हिंदू झुकता है कृष्ण की प्रतिमा के सामने, रुक ही नहीं सकता बिना झुके। चाहे भी कि रुक जाए तो नहीं रुक सकता। करीब–करीब बात अचेतन में समा गई है। यह एक तरह का सम्मोहन है। यह सामूहिक सम्मोहन है। इसको हम आदर कहते हैं। समाज इसी तरह की थोथी बातों पर जिंदा है।

265. प्रज्ञाचक्षु से देखो

तुम्हारे भीतर जो होगा वही तुम्हें बाहर दिखाई पड़ेगा। जब कोई कहता है परमात्मा है– मानकर नहीं, जानकर, अनुभव से– तो धन्यभागी है वह व्यक्ति। क्योंकि इसका अर्थ इतना ही होता है कि उसके भीतर उत्सव इतना घना हुआ है कि अब उसे चारों तरफ परमात्मा दिखाई पड़ने लगा है। उसके भीतर चेतना इतनी प्रगाढ़ हुई है कि उसे अब पत्थर को चीर कर भी परमात्मा को देखने में अड़चन नहीं है। जिन्होंने कहा कण–कण में परमात्मा है, वे क्या कह रहे हैं; वे यह कह रहे हैं कि हमारी आंखें इतनी गहरी हो गयी हैं अब, कि तुम्हें पदार्थ दिखाई पड़ता है, हमें परमात्मा दिखाई पड़ता है। पदार्थ अंधों को दिखाई पड़ता है। पदार्थ, तुम ऐसा है जैसे अंधे आदमी ने परमात्मा को टटोल कर देखा है और उसकी देह–भर का उसे पता चला है। अंधा आदमी तो टटोल कर ही देख सकता है।

266. भेद–अभेद

वहां वचन तो पहुंचता ही नहीं। जानना भी नहीं पहुंचता वहां। वहां तो प्रीति पहुंचती है, जानना नहीं, ज्ञान नहीं। वहां तो प्रेम पहुंचता है। वहां ध्यान भी नहीं पहुंचता। जब तक ध्यान है तब तक अभी वहां नहीं पहुंचे। वहां पहुंचते ही ध्यान विदा हो जाता है। और ध्यान जहां विदा हो जाता है उस अवस्था का नाम समाधि है। ख्याल रखना, समाधि न तो जानने का नाम है। समाधि में न कोई जानने वाला बचा, न जाना जाने वाला; न कोई ज्ञाता न कोई ज्ञेय; न कोई द्रष्टा न दृष्य! ध्यान में दो होते हैं– ध्यान करनेवाला और जिस पर ध्यान कर रहा है। ध्यान में भेद होता है। ज्ञान में भी भेद होता है; कोई जान रहा है। सुंदरदास कहते हैं : वहां न ज्ञान पहुंचता है न ध्यान। वहां तो सिर्फ प्रेम पहुंचता है, प्रीति पहुंचती है।

267. मार्ग क्या है और मंज़िल क्या

चेतन जीवन के दो रूप हैं स्व–चेतन कान्शस और स्व–अचेतन, सेल्फ अनकान्शस। स्व–चेतना से योग का प्रारम्भ होता है और स्व के विसर्जन से अन्त। स्व–चेतन होना मार्ग है, स्वयं से मुक्त हो जाना मंजिल है। स्वयं के प्रति होश से भरना साधना है और अन्ततः होश हीं रह जाये, स्वयं खो जाये, यह सिद्धि है।

268. संत गुलाल कहते हैं–

चारों तरफ मोती बरस रहे हैं, मगर हमें पता नहीं चल रहा। मोती ही मोती बरस रहे हैं! गुलाल ठीक कहते हैं : 'झरत दसहुं दिस मोती'! दसों दिशाओं से झर रहे हैं। अनंत झर रहे हैं। प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है और अमृत बरस रहा है। भर लो अपने घट! मगर तुम्हें पता ही नहीं कि अमृत बरस रहा है। तुम तो कंकड़–पत्थर बीन रहे हो। तुम्हें मोतियों का पता कैसे चले, तुम्हारी आंखें तो कंकड़–पत्थर पर अटकी हैं। कंकड़ों–पत्थरों से तुम थोड़े छूटो; आंखों को थोड़ा संवारो, निखारो, कानों को थोड़ा शांत करो; मन को थोड़ा निर्विचार करो; तो शायद वह संगीत सुनायी पड़े जो परमात्मा का संगीत है। जिसे संतों ने अनाहत नाद कहा है। तो शायद तुम्हें वह प्रकाश दिखायी पड़े जो अंधेरे में भी छिपा है, जो अंधेरे में भी मौजूद है, क्योंकि अंधेरा भी उसका ही एक रूप है। तो तुम्हें देह में भी उसकी प्रतीति होने लगे जो अदेही है लेकिन देह में ठहरा हुआ है। तब तुम्हें चारों ओर उसकी आभा का मंडल अनुभव हो। तभी तुम इस सूत्र को समझ पाओगे। तभी तुम्हारे भी प्राण कह सकेंगे : 'झरत दसहुं दिस मोती'! और तब कितना आह्लाद, कितना हर्षोन्माद! तब आनंद में रोता है भक्त। तब आनंद में हंसता है, नाचता है। तब आनंद का कोई पारावार नहीं है। और उस पारावार से मुक्त जो आनंद है, उसी का नाम परमात्मा है।

269. उसी एक में सब

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। पुनः–पुनः स्मरण रखना! परमात्मा केवल आनंद की अनुभूति का नाम है। अमृत का साक्षात्कार है; चैतन्य की प्रतीति है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा केवल शक्ति है, ऊर्जा है। और ऊर्जा का ही तो सारा खेल है। कहीं वही शक्ति हरी होकर वृक्ष हो गयी है, लाल होकर फूल हो गयी है, कहीं वही शक्ति सूरज बनी है, कहीं वही शक्ति तारे; वही शक्ति तुम्हारे भीतर सुन रही है अभी, वही शक्ति मेरे भीतर बोल रही है अभी। उससे कुछ भी भिन्न नहीं है! हम सब उसमें एक हैं, अभिन्न हैं।

270. जितनी अमीरी, उतनी ग़रीबी

अमीर के पास बाहर धन इकट्ठा होता जाता है; जैसे–जैसे बाहर धन के ढेर लगते हैं, वैसे–वैसे भीतर गरीबी के गड्ढे साफ दिखायी पड़ने लगते हैं। जहां पहाड़ खड़े होते हैं, वहां खाइयां हो जाती हैं। बाहर पहाड़ खड़े होने लगते हैं धन के और भीतर निर्धनता की खाई साफ होने लगती है। जितना बाहर धन हो उतना ही भीतर अखरता है निर्धन होना। और बाहर का धन भीतर तो ले जाया नहीं जा सकता। उसे भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। कोई मार्ग ही नहीं है! जो बाहर है वह बाहर और जो भीतर है वह भीतर। तुम हीरे–जवाहरातों को भीतर न ले जा सकोगे। भीतर तो केवल चैतन्य के हीरे–जवाहरात जा सकते हैं। झरत दसहुं दिस मोती! जब तुम्हारे भीतर मोतियों की वर्षा होने लगे, तभी तुम भीतर से धनी हो सकोगे; नहीं तो बहुत अखरेगी भीतर की अवस्था। इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती है: जितना ही कोई व्यक्ति समृद्ध होता चला जाता है, उतनी ही उसके भीतर इस बात की स्पष्ट प्रतीति होने लगती है कि बाहर तो धन है, अब भीतर धन कैसे हो?

271. सोना दे, मिट्टी लिया

गुलाल कहते हैं कि जन्म से तुम इतनी बड़ी संपदा लेकर आते हो, उस सबको गंवा कर चले जाते हो। गंवा देते हो व्यर्थ की चीजों में। हीरे दे देते हो, कंकड़ खरीद लेते हो। चैतन्य बेच देते हो, मिट्टी-पत्थर इकट्ठा कर लेते हो। फिर मौत आती है, सब पड़ा रह जाता है। तब पता चलता है कि अरे, जो कमाना था वह कमाया नहीं। जो कमाने योग्य नहीं था, उसमें सब समय गंवाया।

272. संभावना समान है

बस, वहां लग जाओ। चौबीस घंटे सतत् भीतर उतरते रहो, डूबते रहो। जिस दिन तुम अपने केंद्र पर खड़े हो जाओगे, जिस दिन अपने चैतन्य के केंद्र पर खड़े हो जाओगे- उसी दिन तुम जान लोगे। फिर न कोई मंदिर, न कोई मस्जिद, न काबा, न काशी, न कोई औपचारिक बातें। न हिंदू होना, न मुसलमान होना, न ब्राह्मण, न शूद्र। फिर तुम उस केंद्र पर खड़े होकर भगवान के हिस्से हो, भगवत्ता के हिस्से हो।

जैसा बुल्लेशाह को हुआ और बुल्लेशाह के साथ बैठ-बैठकर गुलाल को हुआ, वैसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है- होना चाहिए!

275. अकथ कहानी अनुभव की

जिन्होंने अपने भीतर डुबकी मारी, जिन्होंने आश्चर्य-विमुग्ध, विस्मय भाव से अपनी चेतना में गोता मारा, वे तो समा गए उसी में। फिर क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या जैन, क्या बौद्ध! फिर उनका कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं, कोई दर्शन नहीं। फिर तो उनका अनुभव ही सब कुछ है। और अनुभव एक है। और अनुभव में जो जी रहा है, वह अलग-अलग नहीं है।

274. शून्यता ही साझा संपत्ति

एक तुम्हारे भीतर इस सारे संग्रह का साक्षी बैठा है– जो मिट्टी नहीं है; जो आकाश नहीं है; जो अग्नि नहीं। एक चैतन्य का आवास तुममें है। लेकिन उस चैतन्य में तुम्हारा अहंकार बिल्कुल नहीं है। व्यक्ति की तरह तुम वहां नहीं हो, वह चैतन्य तो सच्चिदानंद है। मेरा चैतन्य और तुम्हारा चैतन्य अलग–अलग नहीं है। हम सबका चैतन्य एक ही है। देहें हमारी अलग, पर आत्मा एक है। वाणी हमारी अलग, मगर शून्य हमारा एक है। बोलें तो हम भिन्न–भिन्न, हमारी बोलियां अलग, लेकिन मौन हो जाएं तो मौन थोड़े ही भिन्न–भिन्न होता है!

275. प्रकृति का आनन्द

झरत दसहुं दिस मोती! बस आंख की कमी है, मोती झर ही रहे हैं। कान बहरे हैं, उसकी वीणा बज ही रही है। शाश्वत। एक क्षण को रुकती नहीं। यह सारा जीवन उसके ही स्वरों से, उसके ही आनंद से, उसके ही उत्सव से रंगीन है, मदमस्त है। एक आदमी है कि बाहर पड़ गया है इस उत्सव के। पड़ जाने का कारण भी है! क्योंकि एक आदमी ही है जो होशपूर्वक इस उत्सव का आनंद ले सकता है। वृक्ष भी सम्मिलित हैं; पौधे, पशु–पक्षी; नदी–नद–पहाड़, तारे, वे सब सम्मिलित हैं उत्सव में, लेकिन उनका सम्मिलित होना उनकी स्वेच्छा से नहीं है। वे चाहें तो भी इस उत्सव से बाहर नहीं हो सकते। यह उत्सव उनके लिए अनिवार्य है। मनुष्य की चेतना स्वतंत्र है। चुनाव की क्षमता है। चाहो तो देखो– झरत दसहुं दिस मोती। चाहो, तो मत देखो। लेकिन तुम चाहो या न चाहो, तुम देखो या न देखो, मोती तो झरते ही जा रहे हैं।

276. सुख–दुख हमारे जागरण से

संसार दुःख का मूल है, यही तोतारटंत पंडित तुम्हें समझाते रहे हैं। संसार दुःख का मूल नहीं। यह टालना है। दुःख का मूल तुम्हारे भीतर छिपा अज्ञान है। दुःख का मूल तुम्हारे भीतर सोई हुई चेतना है, संसार नहीं। और एक दफा तुमने यह गलत निर्णय ले लिया कि संसार दुःख का मूल है, तो फिर और–और गलत निर्णय इससे निकलेंगे। फिर इसका अर्थ होगा कि संसार को छोड़ो। फिर तुम्हारा संन्यास संसार का त्याग बन जाएगा। पहली भूल से दूसरी भूल पैदा हो रही है। पहले संसार दुःख का मूल था, यह मान लिया, अब सुख की तलाश में चले तो संसार छोड़कर चले। न संसार दुःख का मूल था, न संसार के त्याग से सुख की उपलब्धि होने वाली है। दुःख का मूल तुम्हारी अचेतना है, मूर्च्छा है। सुख का मूल भी वही है। जाग जाओ भीतर तो सुख है। जाग जाओ भीतर तो स्वर्ग है। सोए रहो भीतर तो नर्क है।

277. अनवरत... प्रतिपल...!

जागकर ही साधक ध्यान नहीं करता, सोते–सोते भी ध्यान में ही होता है। चैतन्य को विश्राम की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि चैतन्य तो सदा विश्राम में है ही। शरीर थकता है; शरीर मिट्टी है, जल्दी थक जाता है। शरीर का बोझ है, जल्दी थक जाता है। जितना ज्यादा बोझ हो शरीर का, उतने जल्दी थक जाएगा। इसलिए मोटा आदमी जल्दी थक जाएगा, दुबला आदमी जरा देर से थकेगा। जितना बूढ़ा हो शरीर उतनी जल्दी थक जाएगा, जितना जवान हो उतना कम थकेगा। छोटे बच्चे का तो और भी कम थकेगा। किंतु चैतन्य का तो न कोई जन्म होता, न कोई बचपन, न कोई जवानी, न कोई बुढ़ापा।

278. प्रश्न का गिर जाना ही उत्तर है

ध्यान का अर्थ होता है : हमने अब तक जो जाना, जो माना– उन सबको एक तरफ रख दो, ताकि चैतन्य का दर्पण उसे प्रतिफलित कर सके जो है। शांत हो जाओ, वहां से उत्तर मिलेगा। मैं उत्तर नहीं दे सकता। न गुलाल उत्तर दे सकते हैं, न कबीर, न फरीद। कोई उत्तर नहीं दे सकता। ये बातें प्रश्न–उत्तर की नहीं हैं। ये बातें बहुत गहरी हैं। प्रश्न–उत्तर तो लहरों की तरह हैं, सागर की सतह पर होते हैं। ये बातें तो सागर की गहराई की हैं। हां, ध्यान में तुम्हें उत्तर मिलेगा। और मजा यह है, बड़ा रहस्यपूर्ण, बड़ा पहेली जैसा कि जब तुम्हारे सारे प्रश्न गिर जाएंगे तब उत्तर मिलेगा। क्योंकि जब तक मन प्रश्न उठा रहा है तब तक ऊहापोह चल रहा है, द्वंद्व मचा हुआ है, धुआं उठ रहा है। तुम्हारे चित्त में प्रतिपल धुआं उठ रहा है। तुम तो गीली लकड़ी हो। आग तो लगती नहीं, जल कर राख भी नहीं होते, धुआं ही धुआं हो।

279. सद्‌गुरु मिटाता है

जो सद्‌गुरु नहीं है, वह तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करेगा। जो सद्‌गुरु है, वह तुम्हारी अपेक्षाओं को धूल–धूसरित कर देगा। जो सद्‌गुरु नहीं है, वह हमेशा तुम्हारी मान्यताओं का समर्थन करेगा। और जो सद्‌गुरु है, वह तुम्हारी मान्यताओं का खंडन करेगा, क्योंकि मान्यताओं के सहारे ही तुम्हारा मन जी रहा है। मान्यताएं गिर जाएं तो मन गिर जाए– और मन गिर जाए तो चैतन्य जग जाए। जो गुरु है और सद्‌गुरु नहीं, वह परम्परावादी होगा, पुराणवादी होगा, लकीर का फकीर होगा; वह तुम्हारे अतीत को ही पीटेगा, अतीत के ही गुणगान गाएगा, क्योंकि अतीत में ही तुम्हारा अहंकार है। जितना महान तुम्हारा अतीत, उतना तुम्हारा बड़ा अहंकार। जो सद्‌गुरु है, वह तुम्हारे अतीत को छिन्न–भिन्न कर देगा। वह कहेगाः कोई अतीत नहीं है, जो बीता सो बीता, जो गया सो गया, और जो अभी नहीं आया है, नहीं आया है।

280. मानो नहीं, जानो

झूठ सस्ता होता है मगर सत्य के लिए तो कीमत चुकानी पड़ती है। मानना बिल्कुल सस्ती बात है। जो चाहो मान लो। लेकिन जानना महंगी प्रक्रिया है। क्रांति से गुजरना होगा। जानने के लिए चित्त को निर्मल करना होगा। जानने के लिए चेतना को जगाना होगा, जानने के लिए मन से मुक्त होना होगा, जानने के लिए समाधि को निर्मित करना होगा। जब समाधान होगा, तब सत्य का अवतरण होगा। वह सब महंगा काम है! मानने में क्या रखा है? मान लिया कि ईश्वर है; मान लिया कि नर्क है, स्वर्ग है; मान लिया कि कुरान सही, बाइबिल सही, वेद सही; मानने में क्या लगा? कुछ लगता नहीं, कुछ खर्च होता नहीं, कुछ करना नहीं पड़ता। और जब इतने सस्ते में ईश्वर मिलता हो तो कौन न ले ले! मगर इतना सस्ता ईश्वर झूठा ही होगा।

281. वास्तविक अनुभव अवर्णनीय है

सब शब्द छोटे हैं; कोई शब्द उसे प्रगट नहीं कर पाता। लेकिन सब शब्द उसके लिए संकेत बन सकते हैं। उसमें ये सब गुण हैं। उसमें परम स्वतंत्रता है, इसलिए तुम मोक्ष कह सकते हो। वह परम मुक्ति है, सारे बंधन गिर गए। उसमें कोई दूसरा नहीं बचता, दुई नहीं बचती, इसलिए कैवल्य कह सकते हो। क्योंकि केवल चेतना रह जाती है, मात्र चेतना रह जाती है, चैतन्य का सागर रह जाता है। कोई पराया नहीं, कोई भिन्न नहीं, कोई अन्य नहीं, सब अभिन्न हो जाता है। तुम चाहो तो उसे ईश्वर कहो; क्योंकि उसे जानते ही तुम्हारे जीवन में ऐश्वर्य की वर्षा हो जाती है। ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से बना है। झरत दसहुं दिस मोती, जैसा गुलाल कहते हैं, मोती ही मोती झर पड़ते हैं। इतने मोती कि बटोरो तो कैसे बटोरो, सम्हालो तो कहां सम्हालो, रखो तो किन तिजोड़ियों में रखो!? सारा जगत ही स्वर्ण हो जाता है।

282. लक्ष्य और दिशा

शुद्ध निर्विकल्प समाधि की अवस्था आखिरी पड़ाव है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं। जहां सहस्त्रदल कमल खुल जाता है; जहां तुम्हारी जीवन चेतना अपनी परिपूर्णता को उपलब्ध होती है; वही सिंहासन है, उसको ही पाने के लिए हम अनंत-अनंत जन्मों से यात्रा कर रहे हैं। और छोटे-मोटे सिंहासनों में उलझ जाते हैं। हमारी असली खोज सिंहासन की है, शायद इसीलिए छोटे-छोटे सिंहासन में उलझ जाते हैं। लगता है कि शायद आ गया सिंहासन। हमारी असली खोज धन की है, इसीलिए छोटे-मोटे धन में उलझ जाते हैं। खोज हमारी परमपद की है। इसीलिए छोटे-मोटे पद में उलझ जाते हैं। ये उलझाव भी एक ही खबर देते हैं कि हमारी दिशा गलत है अन्यथा हमारी खोज तो सही है। हम पद ही खोज रहे हैं, जो छीना न जा सके; हम धन ही खोज रहे हैं, जो नष्ट न हो; और हम ऐसा सिंहासन चाहते हैं जिससे फिर उतरना न पड़े।

283. कृतज्ञता है प्रवेश-द्वार

हृदय को खोलने की तत्परता का नाम श्रद्धा है। और जब हृदय श्रद्धा में खुलता है, तो अहोभाव की सुगंध उठती है। जैसे ही अहोभाव की सुगंध तुम्हारे भीतर उठने लगी, तुम्हारे भीतर एक कृतज्ञता अनुभव होने लगी कि मैं धन्यभागी हूं- किसी कारण नहीं; बल्कि हूं, इसीलिए धन्यभागी हूं। इस विराट अस्तित्व में मैं भागीदार हूं, यह सौभाग्य पर्याप्त है। इस रहस्यमय लोक में मैं भी एक किरण हूं, मैं भी एक जीवन हूं! चैतन्य के इस विराट सागर में, मैं भी एक लहर हूं! मेरा भी अपना नृत्य है, मेरा भी अपना गीत है! परमात्मा ने मुझे भी चुना है। उसके द्वारा चुना गया हूं, तभी तो हूं! ऐसी प्रतीति हो तो बस, तुम्हारा जीवन उस नए आयाम में प्रवेश कर जाएगा जिसको मैं संन्यास कहता हूं।

284. विसर्जन में है अनंत चेतना का अनुभव

डूबो अपने में। सबसे बड़ी गहराई वहां है। प्रशांत महासागर की भी गहराई इतनी गहराई नहीं। हालांकि पांच मील गहरा है प्रशांत महासागर, मगर तुम्हारी गहराई के सामने कुछ भी नहीं। चेतना की गहराई अनंत है। और चेतना की ऊंचाई भी अनंत है। गौरीशंकर भी इतना ऊंचा नहीं जितनी चेतना की ऊंचाई है। चेतना ऊंचे से ऊंचा तत्व है– और गहरे से गहरा भी।

सुनाई किसने पल में आन, कान में मधुमय मोहक तान?
तरी को ले जाओ मंझधार, डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार, वही पहुंचा देगा उस पार!

विसर्जन की कला सीखो। डूबने की कला सीखो। और कहीं और किसी चीज में नहीं डूबना है, अपने में डूबना है। डूब सको मंझधार में, अपने ही प्राणों में, अपनी ही चेतना में सारे अहंकार को विसर्जन करके एक हो जाओ, एकाकार हो जाओ।

285. हीरा जनम अमोल है...! जीवन बहुत छोटा है। और जैसे हम उसे जीते हैं, उससे तो और भी छोटा होता जाता है। हम कमाते कम, गंवाते ज्यादा हैं। हमारा जीवन, जीवन कहा जा सके, ऐसा भी नहीं। जीवन तो दूर, हमारा ठीक से जन्म भी नहीं हो पाता। जिन्हें स्वयं का होना केवल देह, मन, इनसे ही बंधा मालूम होता है, उन्होंने अभी जाना ही नहीं कि वे क्या हैं और वे क्या हो सकते हैं! जीवन का वास्तविक जन्म तो चैतन्य के अनुभव से शुरू होता है। आत्मानुभव के बिना कोई जन्म नहीं है। आत्मा को न पहचाना, न जाना, तो सोए–सोए सब गंवाया।

286. चरित्र का निर्माण चैतन्य से

ये तुम्हारे महात्मा प्रौढ़ भी नहीं हैं, महात्मा तो बहुत दूर। इनको कम-से-कम इतना तो पता होना चाहिए कि चरित्र भय और लोभ के आधार पर निर्मित होगा तो झूठा होगा, मिथ्या होगा। असली चरित्र चैतन्य से निर्मित होता है। तुम जागते हो भीतर, ध्यान तुम्हारी ऊर्जा को प्रज्वलित करता अग्नि की भांति, तुम्हारे भीतर दीया जलाता है और उस दीए के प्रकाश में तुम देखते हो क्या ठीक है और क्या गलत। न तो गीता से तुम जीते हो, न कुरान से, न बाइबिल से, न महावीर से, न बुद्ध से। तुम जीते हो अपनी रोशनी में। और यही परम बुद्धों ने कहा है। बुद्ध का अंतिम संदेश पृथ्वी पर यही थाः 'अप्प दीपो भव। ' अपने दीए बनो। अपने दीए खुद बनो। तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया जले, फिर तुम्हें दिखाई पड़ता है क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। फिर तुम वही करते हो जो करने योग्य है। फिर चाहे शास्त्र के अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल हो। क्योंकि शास्त्रों में सभी बातें सही नहीं हैं।

287. चरित्र है संन्यास का मार्ग

चरित्र तो भीतर से ही आ सकता है। संन्यास तो चरित्र की आत्यंतिक अवस्था है। अंतिम ऊंचाई, पराकाष्ठा, परम प्रकाश, परम सुगंध। यह तो केवल चैतन्य से ही संभव हो सकता है। यह तुम्हारे पास देखने की अंतर्दृष्टि होनी चाहिएः क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। जैसे दीया जल रहा हो घर में, तो तुम दरवाजे से निकलते हो, टटोलते नहीं। दीया न जल रहा हो घर में, तो टटोलना भी पड़ता है, और कभी-कभी दीवाल से भी टकरा जाते हो, कभी फर्नीचर से भी टकरा जाते हो, कभी कोई सामान भी गिरा देते हो। ऐसे ही तुम्हारे भीतर दीया जल रहा हो तो दरवाजा दिखाई पड़ता है। वही दरवाजा चरित्र है।

288. साक्षी है अनन्त

बस, निरपेक्ष बन सको, देख सको देह को अपने से भिन्न, देख सको मन को अपने से भिन्न, जाग कर स्वयं के भीतर इस पहचान को कर सको कि मैं सिर्फ चैतन्य मात्र हूं, चिन् मात्र, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति घट गई। फिर मृत्यु तुम्हारा कुछ बिगाड न पाएगी, तुमसे कुछ भी छीन न पाएगी। और तुम्हारे जीवन में पहली बार परमात्मा का पदार्पण होगा। तुम्हारा नया जन्म होगा। तुम समय के पार उठ जाओगे। कालातीत से तुम्हारा मिलन होगा।

289. थोड़ी तैयारी तो करनी होगी

थोड़े मन को देखने की कला सीखो! हम मन के साथ एक ही हो जाते हैं। मन जो करता है, लगता है हम कर रहे हैं। नहीं, तुम मन से पृथक् हो। तुम चैतन्य हो, शुद्ध साक्षी। मन के द्रष्टा। उठने दो मन में ऊहापोह–भागने के, जाने के, कल्पनाओं के अनेक जाल... उठने दो; दूर खड़े होकर देखते रहो; जैसे कोई नदी के तट पर बैठकर नदी में उठती लहरों को देखता हो, ऐसे मन के तट पर बैठ जाओ, मन की लहरों को देखते रहो और एक अद्भुत चमत्कार घटता है! देखते–देखते ये सारी लहरें शांत हो जाती हैं। देखते–देखते पूरे मन की धार तिरोहित हो जाती है औरे एक दिन सन्नाटा और शून्य उतर आता है। और जहां शून्य है, वहां पूर्ण है। जहां शून्य है, वहां परमात्मा के आने के लिए हमने तैयारी कर ली, हम पात्र हो गए। क्योंकि सूनी प्याली में ही, खाली प्याली में ही उसका अमृत भर सकता है।

290. चरित्र आरोपित होता है

धर्म सिखाते हैं चरित्र और चरित्र का अंतिम परिणाम पाखंड है। बात एकदम बेबूझ लगेगी। क्योंकि तुम सोचते हो, चरित्र ही तो असली चीज है। चरित्र बिल्कुल असली चीज नहीं है। असली चीज है–चैतन्य। चरित्र होता है बाहर, चैतन्य होता है भीतर। चैतन्य से जिओ तो तुम जो करो, वही ठीक है। लेकिन धर्म तुम्हें सिखाते हैं: चैतन्य वगैरह की फिक्र छोड़ो। चैतन्य तो कुछ अवतारी पुरुषों की बात है। यह तो कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई मुहम्मद, पैगंबर, अवतार, तीर्थंकर, ईश्वरपुत्र, इन कुछ थोड़े–से लोगों को छोड़ दो, यह तुम्हारे बस की बात नहीं, यह तुम्हारे बलबूते की बात नहीं। तुम तो हड्डी–मांस–मज्जा के आदमी हो।

चरित्र का मतलब यह कि दूसरों ने जो कहा है, उस ढंग से जिओ। खुद के बोध से नहीं। यहीं मुश्किल खड़ी हो जाती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इतना भिन्न है, इतना अनूठा है कि किसी दूसरे की मान कर जिएगा तो झूठा हो ही जाएगा। होना ही पड़ेगा।

291. गुरु बताता है, थोपता नहीं

चैतन्य पर मेरा जोर है। मैं कहता हूं: अपनी चेतना से जिओ। इसलिए मैं अपने संन्यासियों को कोई चरित्र नहीं दे रहा हूं। उनसे कहता ही नहीं कि ऐसा करो या वैसा करो; यह पहनो, वह खाओ, वह पिओ; कब सोओ, कब जागो। नहीं, तुम अपने चैतन्य से जिओ। भोजन के संबंध में, नींद के संबंध में, जीवन के सारे अंगों के संबंध में। मेरा काम है कि तुम्हारे भीतर चैतन्य कैसे आविर्भूत हो, इसकी प्रक्रिया तुम्हें दूं। तुम्हें ध्यान दूं, बस। फिर ध्यान से आचरण अपने–आप आएगा। आना चाहिए।

292. मैं और मेरा– दोनों गलत

भक्त के पास भगवान को चढ़ाने को कुछ है भी नहीं। जो है, उसका है। न चढ़ाओ तो तुम एक भ्रांति में जीते हो कि मेरा है। मेरा यहां कुछ भी नहीं। 'मैं' का ही कोई अस्तित्व नहीं तो 'मेरे' का क्या अस्तित्व होगा! 'मैं' एक झूठ है। और उस झूठ के फैलावे का नाम 'मेरा' है। 'मैं' केंद्र है हमारे अज्ञान का। और 'मेरा' उस केंद्र की परिधि। न तो 'मेरा' सच है, न 'मैं' सच है। दोनों जहां गिर जाते हैं, वहां पूजा पूरी हो जाती है। फिर सब उसका है। जिस क्षण तुम ऐसा जानते हो कि सब उसका है, उसी क्षण संताप के दिन गए, संगीत के दिन आए। उसी दिन पतझड़ तिरोहित हो जाता है और वसंत झरझर चारों ओर आंदोलित होने लगता है।

293. चेतना की स्वतंत्रता

वसंत उत्सव का प्रतीक है। फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं, सब हरा–भरा हो जाता है। जैसे बाहर वसंत है, ऐसे ही भीतर भी वसंत घटता है। और जैसे बाहर पतझर है ऐसे ही भीतर भी पतझर है। इतना ही फर्क है कि बाहर का पतझर और वसंत तो एक नियति के क्रम से चलते हैं– श्रृंखलाबद्ध, वर्तुलाकार घूमते हैं, भीतर का पतझर और वसंत नियतिबद्ध नहीं है। तुम स्वतंत्र हो, चाहे पतझर हो जाओ, चाहे वसंत हो जाओ। इतनी स्वतंत्रता चेतना की है।

लेकिन दुर्भाग्य है कि अधिक लोग पतझर होना पसंद करते हैं। पतझर का कुछ लाभ होगा, जरूर पतझर से कुछ मिलता होगा अन्यथा इतने लोग भूल न करते! पतझर का एक लाभ है– बस एक ही लाभ है, शेष सब लाभ उससे ही पैदा होते मालूम होते हैं और वह लाभ यह है कि पतझर है तो अहंकार बच सकता है। दुःख में अहंकार बचता है दुःख अहंकार का भोजन है। इसलिए लोग दुःखी होना पसंद करते हैं।

294. अपना अनुभव ही शिखर है

विवेक का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर चैतन्य का आविर्भाव, इस बात की प्रतीति कि मैं कौन हूं। उपनिषद कहते हैं– मैं जो कहता हूं, वह नहीं। गुलाल कहते हैं– तुम्हारा निज का अनुभव कि मैं कौन हूं जिस दिन भीतर दीए की तरह जलता है, उस दिन मृत्यु पराजित हो गयी। उस दिन तुम्हारी विजययात्रा पूर्ण हो गई। उस दिन पहुंच गए सिंहासन पर, जहां से हटाए नहीं जा सकते।

295. वह जो अनहद है....

वीणा तुमने सुनी होगी। सुंदर है, मधुर है। मगर उस वीणा के मुकाबले कुछ नहीं जो तुम्हारे भीतर बज रही है। तुमने बाहर सूरज का उगना देखा? अति सुंदर है, पर उस सूरज के मुकाबले कुछ भी नहीं जो तुम्हारे भीतर प्रतीक्षा कर रहा है उग आने की। तुमने कमल खिले देखे झीलों में? आकर्षक हैं! लेकिन तुम्हारे चैतन्य की झील में जो कमल खिलता है– सहस्त्रदल कमल– उस के समक्ष कुछ भी नहीं। क्योंकि बाहर के सब कमल मुरझा जाते हैं और भीतर का कमल कभी मुरझाता नहीं। और बाहर जो सूर्योदय होता है, अभी सूर्योदय हुआ है अभी सूर्यास्त हो जाएगा; मगर भीतर का सूर्योदय हुआ तो हुआ – सदा के लिए हुआ। बाहर का वसंत आता है और विदा हो जाता है, भीतर का वसंत शाश्वत है। तुम्हारे भीतर एक नाद बज रहा है। तुम नहीं बजा रहे हो, कोई नहीं बजा रहा है, बजाने वाला नहीं है, लेकिन नाद उठ रहा है– नाद तुम्हारा स्वभाव है। उस नाद को ही हमने ओंकार कहा है।

296. प्रभु कहां?

परमात्मा मूर्ति नहीं, जो तुम्हें मंदिर में मिलेगा। परमात्मा इंसान नहीं, जो तुम्हें समाज में मिलेगा। परमात्मा जीवन है, जो तुम्हें अपने भीतर मिलेगा।

297. जागृति में सम्यक् बोध

तुम तो अभी गलत ही गलत हो। तुम तो अभी ठीक भी करते हो तो गलत होता है क्योंकि तुम्हारे भीतर अभी ठीक चैतन्य नहीं है, सम्यक् बोध नहीं है। तो तुम जो भी करोगे, गलत होगा। नेकी करोगे, बदी हो जाएगी।

यही हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अच्छा करना चाहता है। बुरे-से-बुरा व्यक्ति भी अच्छा करने के लिए लालायित होता है, लेकिन अच्छा हो कहां पाता है! उसका बुनियादी कारण यह नहीं है कि लोगों के अभिप्राय बुरे हैं। लोगों के अभिप्राय तो बड़े भले हैं, लेकिन जिस चेतना से कृत्यों का जन्म होता है, वह चेतना प्रसुप्त है, सोयी हुई है। नींद में उनसे क्या भला होगा! लोग नींद में अगर रक्षा के लिए तलवारें भी चलाएं तो अपनों को ही मार डालेंगे, खुद को ही काट लेंगे। होश पहली जरूरत है।

298. शरणागति चाहिए, बस...!

अहंकार न मालूम कितने सूक्ष्म रास्तों से अपने को भरता है। पांडित्य से भर लेता है, धन से भर लेता है, त्याग से भर लेता है। इसके रास्ते बड़े बारीक और बड़े अचेतन हैं। जबकि शरणागति का अर्थ है- सब परमात्मा पर छोड़ देना। कहना- मैं तो कुछ भी नहीं हूं, तू ही है। गुलाल कहते हैं: सरन संभारि धरि... बस, एक बात संभाल कर रख लो तो संपदा बच गयी, तो तुमने जीवन का सत्य पा लिया। शरण को संभाल लो। लेकिन तुम संभाल रहे अहंकार को!

चरनतर रहो परि.. शरणभाव रहे और गिर पड़ो चरणों में- अज्ञात के चरणों में। सिर उठाए मत चलो। इस अकड़ ने कितनों को डुबाया, तुम्हें भी ले डूबेगी। और जिन्होंने अकड़ छोड़ दी, वे तर गए, वे उस पार पहुंच गए।

299. धर्म के नाम पर आत्मघात

जिनको तुम महात्मा समझते हो, वे तुम्हें क्या खाक जीवन की दिशा देंगे, वे तो खुद ही मरने के रास्ते पर चल रहे हैं। वे तुम से भी ज्यादा विकृत हैं। तुम तो कम–से–कम सामान्य हो, वे सामान्य भी नहीं। जीवन की खोज के लिए तो सिर्फ एक ही चीज आवश्यक है, सिर्फ एक– न तो त्याग, न तप, न शरीर को सताना, – ये सब हिंसक बातें हैं, और हिंसा से कोई आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। फिर हिंसा दूसरों की हो या अपनी, हिंसा हिंसा है और पाप है। आत्मज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति जीवन से संबंधित होता है। अभी यह भी तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूं, तुम जीवित कैसे हो सकते हो?

वह एक बात क्या है? वह है– ध्यान। तुम्हें साक्षी बनना होगा। तुम्हें अपने भीतर उतर कर उस चेतन तत्व को पहचानना होगा जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। जिस दिन तुम चैतन्य को अनुभव करोगे, जिस दिन तुम जानोगे मैं देह नहीं, मन नहीं, धन नहीं, पद नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, मैं तो सिर्फ वह हूं जो द्रष्टा है सबका। ऐसा जिस दिन तुम अनुभव करोगे, उस दिन द्विज हुए, उस दिन ब्राह्मण हुए, उस दिन शूद्र होना मिटा, उस दिन से तुम्हारे जीवन में क्रांति की शुरुआत है, रोशनी और रोशनी बढ़ती जाएगी। अभी तो तुम जिसे जीना कहते हो, बस नाममात्र का जीना है।

300. स्वीकार भाव में जियो

अंधेरे से हमारे अचेतन में एक भय समा गया है। लेकिन अंधेरे में बड़ा सौंदर्य है। प्रकाश सुंदर है। वैसे ही, अंधेरा भी सुंदर है। प्रकाश की अपनी महिमा है, अंधेरे की अपनी महिमा है। क्योंकि परमात्मा के दोनों पहलू– प्रकाश और अंधेरा– एक ही सिक्के के दो पहलू जैसे। अंधेरे में भी परमात्मा ही है। अंधेरा भी उसका ही है और प्रकाश भी उसका है। उसकी ही अभिव्यक्तियां।

301. शाश्वत की तलाश

घर से मतलब है आत्मा का। वहीं तो हमारा घर है। यह मिट्टी का घर जो तुमने बना लिया है, यह तो सराय है। आज ठहरे, कल चले। और यह जो देह है, यह भी सराय है। इस जन्म ठहरे, अगले जन्म चले। इस देह के भीतर जो चैतन्य है– आत्मा– वहीं असली घर है। जो छिने न, वही घर। जो छीना ही न जा सके, वही घर है। जो शाश्वत है, जो सदा हमारा है, जिससे हम दूर होना भी चाहें तो भी न हो सकें, वहीं घर है। उसी घर की ही तो प्यास है, उसी घर की तो हम खोज में लगे हैं।

302. जानने में है परम विश्राम

फिरब चलब सब थाकल हो, एकौ नहिं गांव।। सब तरफ थककर, चल–फिर कर देख लिया। यहां एक भी गांव अपना नहीं। यहां अपना गांव ही नहीं है। गांव तो मन के कहीं पार है। न तो गांव हमारे शरीर में है, न गांव हमारे मन में है, गांव तो हमारा चैतन्य में है। वहीं विश्राम है। वहां जो पहुंचा, वही वस्तुतः जिया, उसने ही वस्तुतः जाना।

303. साधना से खिलेगा सहस्रदल–कमल

अकेला रहने में समर्थ होना चैतन्य की अंतिम अवस्था है। समाधि की अवस्था है। तुम्हारे चाहने से ही तुम अकेले नहीं रह सकोगे! साधना करनी होगी। तुम चाहो कि ताजमहल बना लूं, तुम्हारे चाहने से ही नहीं बन जाएगा। ताजमहल बनाना बड़ी कला की बात है। तुम चाहो कि तुम्हारी बगिया में बड़े–बड़े फूल खिलें, कमल खिलें, मगर तुम्हें बागवानी सीखनी होगी। यह चाहने से ही नहीं हो जाएगा। यह कोई कल्पना की बात ही नहीं है। और ताजमहल तो कुछ भी नहीं, कमल के फूल तो कुछ भी नहीं, वह जो भीतर कमल का फूल है, वह जो भीतर ताजमहल है, वह जो समाधि की अंतिम अवस्था है, उसके लिए गहन साधना से गुजरना होगा।

304. जो है, संयोगवश है

मनुष्य के जीवन मे साधारणतः सभी कुछ अचेतन रूप से शुरू होता है। और तो शुरू होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मनुष्य अभी चेतन कहां? अभी तो तुम्हारे जीवन में जो होता है सब संयोगवश है। प्रेम घट जाता है– संयोगवश, मित्रता हो जाती है– संयोगवश। फिर मित्रता में चाहे जीवन भी गंवाना पड़े, प्रेम में चाहे फिर सब कुछ लुटाना पड़े– मगर बात तो होती है संयोगवश ही। तुम्हारी जिंदगी ऐसे ही संयोगों से भरी है क्योंकि मनुष्य का जीवन ही अचेतन है। इस अचेतन जीवन में तुम जागरूकता से कोई कदम नहीं उठा सकते।

305. रूपरहित–वर्तमान

कोरा कैनवास ही अस्तित्व का वास्तविक स्वरूप है। अगर तुम वर्तमान में उतर जाओ, तो वहां न कोई विचार है, न कोई वासना है। वहां सिर्फ शांति, परम शांति है, शून्य है। उसी शून्य में पूर्ण का साक्षात्कार है। इसको ही जागना कहो, चेतना कहो, होश कहो, अप्रमाद कहो, ध्यान कहो, सुरति कहो, स्मरण कहो, जो तुम्हें कहना हो, मगर यही सारे संतों का सार है।

306. चैतन्य–विज्ञान अनेक नहीं

पृथ्वी पर तीन सौ धर्म हैं और तीन सौ धर्म के कम से कम तीन हजार उप–धर्म हैं, और और कम से कम तीन लाख उन उप–धर्मों के छोटे–छोटे संप्रदाय हैं। इतने छोटे–छोटे संप्रदाय कि उनके नाम भी याद रखना मुश्किल है।

धर्म तो एक है! धर्म दो कैसे हो सकते हैं? जब विज्ञान दो नहीं होते, जब पदार्थ का विज्ञान तक एक होता है, तो चैतन्य का विज्ञान तो कैसे अनेक हो सकता है?

307. धनी की निर्धनता

धनी धन पाकर भी चुप रहता है। भीतर ही भीतर पीड़ित होता है, दुखी होता है, रोता है; और बाहर, मुस्कुराहट! पद पर पहुंचा हुआ व्यक्ति भीतर तो बेचैन होता है, क्योंकि देखता है कि पद पर तो आ गया, मिला तो कुछ भी नहीं! कुर्सी कितनी ही ऊंची हो जाए, इससे मिलना क्या है? तुम तो जो थे, वही हो! सिर्फ कुर्सी की ऊंचाई से तुम्हारे चैतन्य की ऊंचाई बढ़ जाती! कि तिजोड़ी में धन के बढ़ने से भीतर की निर्धनता मिट जाती! काश इतना आसान होता कि बाहर यश फैल जाता, नाम फैल जाता, ख्याति फैल जाती और भीतर सब कुछ तृप्त हो जाता, संतुष्ट हो जाता! पर ऐसा नहीं होता।

308. सौभाग्य और दुर्भाग्य भी

सौभाग्य की बात थी कि इस देश में बड़े पहुंचे हुए फकीर हुए। लेकिन दुर्भाग्य की बात थी कि नासमझों ने उनकी बातें पकड़ लीं और उनकी बातों के आधार पर जीने की चेष्टा शुरू कर दी। एक तरफ बुद्ध, महावीर, कृष्ण, ऐसे अद्भुत ज्योतिर्मय लोगों की धारा है और दूसरी तरफ बुद्धुओं की एक महान जमात। एक तरफ जलते हुए थोड़े-से दीए और दूसरी तरफ अमावस की रात। ठीक है कि हम दीवाली अमावस की रात को मनाते हैं, वह इस देश की प्रतीक है। वे बुद्ध, कृष्ण, महावीर, कबीर, नानक, पलटू, रैदास, फरीद जैसों ने ज़रूर दीए जला लिए। अमावस की रात में हम दीवाली मनाते हैं, मगर देश में तो अमावस की रात है। हां, कभी-कभी कोई दीया जल जाता है और हम उसी दीए के गुणगान में लौलीन हो जाते हैं और भूल ही जाते हैं कि अमावस की रात इससे मिटती नहीं, अपनी जगह बनी है। जब तक कि प्रत्येक दीया जल न उठे, जब तक कि प्रत्येक प्राण जल न उठें, चैतन्य से ज्योतिर्मय न हो उठें, तब तक यह रात मिटेगी नहीं। एक तरफ सदगुरुओं के वचन होंगे और दूसरी तरफ पाखंडियों की जमात होगी।

309. चैतन्य की खिलावट

एच.जी.वेल्स ने बुद्ध के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण बात लिखी है। लिखा है कि इस पृथ्वी पर बुद्ध से ज्यादा ईश्वर–रहित और ईश्वर–जैसा व्यक्ति दूसरा नहीं हुआ। ईश्वर–रहित इन अर्थों में कि वह आस्तिक नहीं हैं और ईश्वर–जैसा, क्योंकि मान्यता नहीं है उनकी ईश्वर की, लेकिन उनका जीवन तो ईश्वरीय है, भागवत है। इसलिए तो हमने बुद्ध को भगवान कहा, यद्यपि भगवान के संबंध में उन्होंने कोई वक्तव्य नहीं दिया। हां और न की कोई बात नहीं की। फिर भी हमने भगवान कहा। क्योंकि भगवत्ता जैसी उनमें खिली, जैसा कमल उनका खिला चैतन्य का, कब खिलता है, कहां खिलता है! बहुत विरल है घटना।

310. अहंकार बचेगा या सत्य

इस दुनिया में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि स्वरूपतः हम सभी को पता है कि सत्य क्या है, लेकिन जान–बूझकर झुठला रहे हैं, जान–बूझकर भ्रमों में पड़ रहे हैं। क्यों हम भ्रम में पड़ना चाहते हैं जान–बूझकर? एक ही कारण है और वह तुम्हारी समझ में आ जाए तो क्रांति घट जाए। वह कारण यह है कि सत्य होगा तो मैं नहीं बचेगा, अहंकार नहीं बचेगा। अहंकार बच सकता है असत्य के साथ, भ्रम के साथ। और तुम अपने को नहीं खोना चाहते। तुम चाहते हो– मैं रहूं, मैं सदा रहूं। इसलिए झूठों में अपने को घेरे हुए हो। झूठ से पोषण मिलता है मैं को। सत्य तो मृत्यु है मैं की। जिस दिन तुमने सत्य देखा, उसी दिन मैं की मृत्यु हो गयी। बचोगे तुम, लेकिन मैं की तरह नहीं, चैतन्य की तरह। उस चैतन्य का कोई विशेषण नहीं होगा। वहां कुछ मेरा–तेरा नहीं होगा। और हमारा सारा खेल मेरे–तेरे का है।

311. समझ : पाप–पुण्य की कसौटी

समझ का अर्थ है, आपके भीतर जो भी घटे, वह आपके जानते, अवेयरनेस में, आपके होश में, आपके चैतन्य में घटे। जो भी! और तब बहुत कुछ घटना बंद हो जाएगा अपने आप। और जो बंद हो जाए, वही पाप है। और जो होशपूर्वक भी चलता रहे, वही पुण्य है। और समझ कसौटी है। समझ के साथ जो चल पाए, वह पुण्य है; और समझ के साथ जो न चल पाए, वह पाप है। नासमझी में ही जो चल सके, वह पाप है। और नासमझी में जिसे चलाया ही न जा सके, वह पुण्य है। तो यह समझ का अर्थ इतना ही हुआ कि मेरे भीतर जो भी घटता है, वह मेरे ध्यानपूर्वक घटे, मेरे गैर–ध्यान में न घटे।

312. सूक्ष्म रहस्य–बोध

सूक्ष्म वह है, जो इंद्रियों की पकड़ में ही न आए, और फिर भी पकड़ में आए। ध्यान रखें, अगर पकड़ में ही न आए, तब तो आपको उसका पता ही न चले। इसलिए दूसरी बात भी ख्याल रख लें। पकड़ में तो आए जरूर, लेकिन किसी इंद्रिय के द्वारा पकड़ में न आए। इमीडिएट हो, कोई मीडिएटर बीच में न हो। कोई मध्यस्थ इंद्रिय बीच में न हो। मैं देख लूं बिना आंख के, मैं सुन लूं बिना कान के, मैं छू लूं बिना हाथ के––तो सूक्ष्म! न हाथ है बीच में, न कोई यंत्र है बीच में; कोई है ही नहीं बीच में। बीच में कोई नहीं है, सीधी मेरी चेतना अनुभव को उपलब्ध हो, तो वह अनुभव सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति का रहस्य–बोध सघन हो जाता है, वह सूक्ष्म का द्वार खोल लेता है।

313. चेतना का परमाणु

व्यक्ति जो है, वह परमाणु है चेतना का। जैसे कि साइंस ने खोज लिया एटम; वह है पदार्थ का अंतिम कण। व्यक्ति में 'करना' तो होता है बाहर, और 'होना' होता है भीतर। बीइंग तो है भीतर, डूइंग है बाहर। और जब कोई भीतर पहुंचता है, तो उस परमाणु को उपलब्ध हो जाता है, जो चैतन्य का परमाणु है, चिन्मय परमाणु है। दि एटम ऑफ कांशसनेस! और उसकी विराट ऊर्जा है। उस चैतन्य के परमाणु को ही हम परमात्मा कहें। उसकी विराट ऊर्जा है। जैसे ही हम उस जगह पहुंचते हैं, इतनी शक्ति हो जाती है कि वह शक्ति ही काम करती है। फिर हमें अलग से काम नहीं करना पड़ता। अगर हम ऐसा कहें तो अजीब लगेगाः इस जगत में शक्तिहीन ही काम करते हैं; शक्तिशालियों के तो होने से ही काम हो जाता है। इस जगत में जो नहीं जानते, वे ही केवल श्रम करके कुछ कर पाते हैं; जो जानते हैं, वे तो विश्राम से भी कर लेते हैं। जिन्हें पता है, वे तो मौन से भी बोल देते हैं; और जिन्हें पता नहीं है, वे लाख-लाख शब्दों का उपयोग करके भी कुछ भी नहीं कह पाते हैं।

314. संबुद्ध की मौजूदगी का जादू

इस पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी जब परमात्मा के निकट सरकता है तो सारी पृथ्वी की चेतना परमात्मा के निकट सरक जाती है। पता चले, न चले! जब भी एक व्यक्ति प्रबुद्ध होता है, तो मनुष्य की चेतना एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाती है। पता भी नहीं चलता तुम्हें। तुमने कभी धन्यवाद भी नहीं दिया है महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को। लेकिन तुम जो कुछ हो आज, उनकी अनुकंपा से हो। काश, हम ये दस-पंद्रह नाम पृथ्वी के इतिहास से अलग कर दें, तो तुम किसी झाड़ पर बैठे होते! डार्विन को सिद्धांत नहीं खोजना पड़ता कि मनुष्य बंदर से विकसित हुआ है। मनुष्य बंदर ही होता! आखिर तुम्हारे बहुत से पूर्वज अभी भी झाड़ों पर बैठे ही हैं!

315. परलोक भी वासना है

जब दर्पण पर बदलियां आती हैं तो तुम सोचते हो दर्पण के भीतर बदलियां पहुंच जाती हैं? जब तुम दर्पण के सामने खड़े हो तो तुम सोचते हो कि तुम्हारा चेहरा दर्पण के भीतर चला गया? तुम हटे कि चेहरा गया! ऐसा ही तुम्हारा चैतन्य है– सदा कोरा, सदा शून्य। उस चैतन्य का अनुभव ध्यान है। और उसकी प्रक्रिया है साक्षीभाव। प्रत्येक कृत्य के साक्षीभाव बनते चलो! साक्षीभाव को जगाते चलो! देखो, कर्त्ता न रहो!

गुलाल ने कहा कि सिद्ध–पुरुष की दो चीजें छूट जाती हैं– कर्म और धर्म। कर्म है संसार को पाने की व्यवस्था, संसार को पाने का साधन और धर्म है मोक्ष को पाने का साधन, परलोक को पाने का साधन। लेकिन जब तक पाने की आकांक्षा है, तब तक आदमी वासनाग्रस्त है। इसलिए गुलाल ने खूब गहरी बात कही कि कर्म और धर्म दोनों से छूट जाता है। ऐसे तो लोग हुए हैं जिन्होंने कहा है– कर्म से छूट जाता है। कृष्ण ने कहा है कि द्रष्टाभाव में कर्म से छुटकारा हो जाता है। लेकिन गुलाल ने एक और ऊंची छलांग ली, कहाः धर्म से भी छुटकारा हो जाता है।

क्योंकि धर्म भी है क्या? वह भी सूक्ष्म कर्म है। कोई धन पाना चाहता है तो कर्म करता है, और कोई मोक्ष पाना चाहता है तो धर्म करता है। दोनों कृत्य हैं। एक आंतरिक कृत्य है, एक बाह्य कृत्य है। जब बाहर से छूटना है तो अंतर से भी छूट जाना है क्योंकि द्वंद्व से ही छूट जाना है। संसार–मोक्ष दोनों जाने चाहिए। और तब, सिर्फ एक दर्पण की तरह सारे अस्तित्व को प्रतिबिंबित करती हुई चेतना शेष रह जाती है। वह चेतना ही ध्यान है। उसकी ही पराकाष्ठा समाधि।

316. आखिरी समाधान

समाधि का अर्थ है समाधान : सब मिल गया। अब कोई आकांक्षा न रही। कुछ पाने को न रहा। कहीं जाने को न रहा। तुम घर आ गए।

संदर्भ साहित्य– इस पुस्तक में संग्रहीत उद्धरण सद्गुरु ओशो की निम्नलिखित किताबों से लिए गए हैं–

झरत दसहुं दिस मोती
प्रीतम छबि नैनन बसी
प्रेम रंग-रस ओढ़ चदरिया
काहे होत अधीर
कस्तूरी कुंडल बसै
पिव पिव लागी प्यास
शिव सूत्र
जिन सूत्र
निर्वाण उपनिषद्
होनी होय सो होय
रहिमन धागा प्रेम का
सहज योग
सपना यह संसार
सुनो भाई साधो
चेतना का सूर्य
ताओ उपनिषद्
ज्योति से ज्योति जले
अकथ कहानी प्रेम की